ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 11 अक्तूबर 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 11 अक्तूबर 2015 से 17 अक्तूबर 2015

आ.कृ. –13● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 41, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

हिमाचल प्रदेश के महामहिम आचार्य राज्यपाल देवव्रत जी का डी.ए.वी. लुधियाना में नागरिक अभिनन्दन किया गया

हिमाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत जी का डी.ए.वी. स्कूल रणधीर सिंह नगर लुधियाना में को भव्य स्वागत किया गया। स्कूल के मुख्य प्रवेश द्वार पर वैदिक परम्पराओं के अनुसार तिलक लगाकर महामहिम डॉ. देवव्रत जी का मंत्रोच्चारण की पवित्र ध्वनियों के बीच स्वागत किया गया। डॉ. देवव्रत जी ने मुख्य प्रागंण में ही 'आर्य–ध्वज' फहराया।

श्री जे.पी. शूर ने उनको केसरिया पगड़ी 'आर्य सम्मान' के रूप में पहनाई। 'दीप प्रज्ज्वलन' बाद स्कूल–छात्रों ने 'स्वागत गान' की प्रस्तुति दी महामहिम देवव्रत जी का स्वागत करते हुए श्री जे.पी.शूर जी ने बताया कि आचार्य जी द्वारा वैदिक मूल्यों एवं परम्पराओं के प्रचार–प्रसार हेतु किये गये इन कार्यों का समाज पर गहरा व रचनात्मक प्रभाव पड़ा है। इसी के साथ उनके शिक्षाविद् रूप पर प्रकाश डालते हुए उन्हें हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल पद पर नियुक्त किये जाने पर बधाई दी और कहा कि देवव्रत जी की नियुक्ति केन्द्र सरकार का एक सही फैसला है जो हमारी भावी पीढ़ी में भारतीय जीवन–मूल्यों के प्रचार–प्रसार हेतु सहायक सिद्ध होगा। 'आर्य समाज पुरोहित सभा' के प्रधान श्री बालकिशन शास्त्री, राजेन्द्र जी विद्यालंकार व डॉ. एस.एस जौहल ने भी उनका स्वागत किया।

प्राचार्या ने स्कूल का संक्षिप्त ब्यौरा 'वार्षिक रिपोर्ट' के रूप में सब के समक्ष रखा। स्कूल प्रबंधकीय समिति के वाइस चेयरमैन डॉ. एस.एस. जौहल जी ने आचार्य जी का स्वागत करते हुए कहा कि वे पिछले लम्बे अरसे से इस डी.ए.वी. संस्थान से जुड़े हुए हैं और भावी पीढ़ी के लिए वैदिक शिक्षाओं का आगार बने हुए हैं, उनका यही कार्य उन्हें अन्यों से 'विलक्षण व्यक्तित्व' बनाता है।

महामहिम डॉ. देवव्रत जी ने अपने भाषण में आधुनिक और पारंपरिक जीवनशैली में समन्वय बनाये रखने पर बल देते हुए कहा कि हमें अपने संस्कारों से जुड़े रहना चाहिए। समाज में हो रहे नैतिक पतन पर भी अपनी चिंता व्यक्त की और कहा कि युवा पीढ़ी को सांस्कृतिक और सभ्य बनाने के लिए एक बार फिर नये सिरे से विचार करना होगा। आचार्य जी ने डी.ए.वी. संस्थाओं से आये हुए प्राचार्यों अध्यापकों और विद्यार्थियों को, समाज में वैदिक विचार धारा और जीवन मूल्यों को प्रसारित करने हेतु आह्वान किया। मंच पर आसीन गणमान्य हस्तियों द्वारा उन्हें प्रेम और सम्मान का प्रतीक चिह्न भेंट किया गया।

इस स्वागत समारोह में श्री जे.पी शूर, श्रीमती पी.पी. शर्मा श्री बी.बी. शर्मा, श्री एस.एस. जौहल (वाइस चेयरमैन 'स्थानीय प्रबंधकर्त्री समिति) तथा स्थानीय मैनेजिंग कमेटी के सदस्यों के अतिरिक्त लुधियाना व आस–पास के डी.ए.वी. संस्थानों के प्राचार्य व 'आर्यसमाज पुरोहित सभा लुधियाना' के अध्यक्ष श्री बालकिशन शास्त्री जी व श्री वी.के सरीन, गणमान्य अतिथि व विभिन्न आर्यसमाजों से आये 100 से ऊपर सदस्य भी इस अवसर पर पधार कर इस कार्यक्रम की शोभा बढ़ा रहे थे।

कार्यक्रम के अंत में श्रीमती पी.पी. शर्मा, क्षेत्रीय निदेशिका ने महामहिम का डी.ए.वी. प्रांगण में में पहुँचने पर हार्दिक आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम का समापन 'शांतिपाठ' से हुआ।

डी.ए.वी. 15ए, चण्डीगढ़ में आयोजित हुआ मान सम्मान समारोह

डी.ए.वी. मॉडल स्कूल, सैक्टर–15ए, चण्डीगढ़ में आर्य युवा समाज के तत्त्वावधान में ''मान सम्मान समारोह'' का आयोजन किया गया। समारोह में सर्वप्रथम कक्षा के.जी. तक के बच्चों के दादा–दादी, नाना–नानी का तिलक लगाकर स्वागत किया गया। तत्पश्चात् **''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म''** इस वेदोक्त यूक्ति को चरितार्थ करते हुए प्राचार्या जी ने इस शुभावसर पर आयोजित यज्ञ में आहुति प्रदान करने हेतु सभी अतिथियों को आमंत्रित किया। मुख्य अतिथि श्रीमती स्नेहलता सामा, प्रधाना, स्त्री आर्य समाज, सैक्टर–16डी, चण्डीगढ़ ने यज्ञीय दीपक प्रज्ज्वलित करके यज्ञ का शुभारंभ करवाया। विद्यालय के धर्माचार्य, आचार्य श्री रमेश कुमार शास्त्री, के ब्रह्मत्व में ''यज्ञ कर्म'' का संचालन किया गया। प्राचार्या महोदया तथा श्री शर्मा प्रधान–रेजिडैंट वेलफेयर एसोयिशन सैक्टर–15ए चण्डीगढ़

सपत्नीक यजमान बने। यज्ञोपरांत संगीत विभाग की अध्यापिकाओं ने भजन प्रस्तुत किए। पुनश्च कक्षा दूसरी के बच्चों ने अपने शब्दों द्वारा दादा–दादी और नाना–नानी के प्रति अपना प्यार दर्शाया। इस शुभावसर पर उपस्थित स्त्री आर्य समाज सैक्टर–16डी, चण्डीगढ़ की प्रधाना, श्रीमती स्नेहलता सामा, एवं सक्रिय सदस्या श्रीमती संयोगिता महाजन ने विद्यालय के इस प्रयत्न की सराहना करते हुए उन्नति की कामना की। अन्त में, श्रीमती हेमा पुंज जी ने अतिथियों का धन्यवाद किया। शांतिपाठ तथा प्रसाद वितरण के साथ सम्पूर्ण कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – **पूनम सूरी**

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 11 अक्टूबर, 2015 से 17 अक्टूबर, 2015

हे सोम! हृदय-कलश में प्रवेश करो

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

पवस्य सोम देववीतये वृषा, इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमाविश।
पुरा नो बाधाद् दुरितादि पारय, क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते।।
ऋग् ९.७०.९

ऋषिः रेणुः वैश्वामित्रः। देवता पवमानः सोमः। छन्दः जगती।

● **(सोम) हे सोम परमात्मन्! (तू), (वृषा) वर्षक (होता हुआ), (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए, (पवस्य) प्रवाहित हो, (इन्द्रस्य) आत्मा के, (हार्दि) हृदय–रूप, (सोमधानं) सोम–कलश में, (आविश) प्रविष्ट हो।, (बाधात्) बाधे जाने से, (पुरा) पहले, (नः) हमें, (दुरिता अति) पापचरणों से लंघाकर, (पारय) पार करदे। (क्षेत्रवित्) मार्ग का ज्ञाता, (विपृच्छते) विशेषरूप से पूछनेवाले के लिए, (दिशः) दिशाओं को, (आह हि) बताता ही है।**

● हे रसागर सोम परमात्मन्! तुम 'वृषा' हो, रस की वर्षा करने वाले हो। तुम दिव्य गुणों के रस के साथ मेरे अन्दर प्रवाहित होवो। तुम आत्मा के हृदय–रूप सोम–कलश में आकर प्रविष्ट होवो। मेरा आत्मा न जाने कब से सोम–पान के लिए उत्कंठित हो रहा है, उस प्यासे की तृषा को दूर करो। तुम कामवर्षी हो, मेरी कामना को पूर्ण करो। तुम आनन्दवर्षी हो, मुझपर आनन्द की वर्षा करो।

कभी–कभी मेरा आत्मा 'दुरितों' से घिर जाता है। पाप–भावनाएँ उसे आगे बढ़ने से रोकती हैं। पाप–कर्म उसे निगलने के लिए तैयार रहते हैं। आसपास का पापमय वातावरण उसे पाप–मार्ग पर चलने के लिए प्रलोभित करता है। ऐसे समय में हे मेरे सोम प्रभु! क्या तुम खड़े देखते ही रहोगे? क्या तुम मुझे 'दुरितों' से ग्रसा जाने दोगे? क्या तुम मुझे पाप–ताप के प्रहारों से छलनी हो जाने दोगे? क्या तुम मुझे दुराचार–रूप शत्रुओं से आक्रान्त हो जाने दोगे? नहीं, तुम मेरे उद्धारक होकर आओ। इससे पहले कि 'दुरित' मेरे आत्मा पर प्रभुत्व पायें, उसे पतनोन्मुख करें, तुम त्वरित गति से मेरे पास आ जाओ और मुझे उन दुरितों से लंघाकर पार कर दो। संसार का यह नियम है कि जो 'क्षेत्रवित्' है, मार्ग का ज्ञाता है, वह पूछने वाले को दिशा बताता ही है। तुमसे बढ़कर 'क्षेत्रवित्' बढ़कर मार्गज्ञ अन्य कौन है! अतः हे मेरे सोम प्रभु! मैं तो तुम्हीं से दिशा पूछता हूँ। मैं दिग्भ्रान्त हो रहा हूँ, तुम कुतुबनुमा यन्त्र की सुई बनकर मुझे दिशा दर्शाओ। यदि तुमसे दिशा–ज्ञान न मिला, तो मेरा जीवन–पोत भव–सागर में डूबकर नष्ट–भ्रष्ट हो जायेगा। हे प्रभु! मुझ भूले को सही राह दिखाओ, मुझ भटके को गन्तव्य लक्ष्य पर पहुँचाओ।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी त्रुटियाँ किससे नहीं होती? चारों ओर वह ठगनी माया खड़ी है, मनमोहक रूप बनाये, धोखे का संसार बनाए हुए। अपराध हो जाते हैं। अपराध हो गया तो पश्चाताप करो। निश्चय करो कि भविष्य में नहीं करेंगे। अपराध हो गया तो निराश होने की कोई बात नहीं। हम ईश्वर को खोजते हैं तो किसलिए? वैद्य को कोई बीमार व्यक्ति ही ढूंढता है ईश्वर को इसलिए खोजते है कि अपराधों की मैल दूर हो जाये। परन्तु इससे पूर्व कि यह मैल दूर हो, आवश्यक है कि पश्चाताप की भावना उत्पन्न हो जाये।

इस भावना के उत्पन्न होते ही मन में प्रकाश होने लगता है, तब भक्त पुकार उठता है कि प्रभो! तेरे द्वार पर आ पड़ा हूं, अब पड़ा रहने दो माँ! हटाओ नहीं यहां से, धुल जाने दो मेरे पाप, हट जाने दो यह अन्धकार। तब मनुष्य अपनी इच्छा छोड़ देता है, प्रभु की इच्छा ही उसकी इच्छा बन जाती है।

अब आगे...

परमहंस रामकृष्ण बीमार थे। गले में कैंसर हो गया था। दर्द से तड़प रहे थे। कलकत्ता के प्रसिद्ध डॉक्टर श्री चक्रवर्ती उनके दर्शन को गए। देखा कि परमहंस बहुत कष्ट में हैं। यह भी देखा कि मैडिकल विज्ञान उनकी सहायता नहीं कर सकता। उनके पास बैठकर बोले, ''योगिराज! विज्ञान इस रोग में विवश है; परन्तु आपकी शक्ति इस रोग को दूर कर सकती है। अपने योगबल से एक बार कहिये कि इस कष्ट का अन्त हो जाए।'' परमहंस मुस्कराकर बोले, ''मैं तो समझता था आप बहुत विद्वान हैं, परन्तु यह बात तो विद्वानों जैसी नहीं। अस्थि मांस के इस शरीर के लिए मैं अपनी योग–शक्ति और आत्मबल का प्रयोग करूँ तो मुझे बुद्धिमान् कौन कहेगा?'' डॉक्टर चक्रवर्ती हारकर बोले, ''स्वयं नहीं करते तो माँ से कह दीजिये कि वह इस रोग को ठीक कर दे।'' परमहंस भगवती की ओर संकेत करके बोले, ''यही मेरी माँ है, मुझसे बुद्धिमती है, अधिक जानती है, उसे पता है कि मेरा कल्याण किसमें है, वही वह कर रही है, फिर मैं प्रार्थना क्या करूँ?''

रणवीर को फाँसी के दण्ड की आज्ञा हुई। सैशन जज ने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा, ''इसे गले में रस्सी डालकर तब तक लटकाये रक्खा जाये जब तक प्राण न निकल जाएँ।'' एक कोलाहल मच गया हर ओर। लोग सहानुभूति के लिए मेरे पास आने लगे, रोनी सूरतें बनाकर, उदास चेहरे लेकर। कभी–कभी आँखों में आँसू भरकर वे मेरे पास आते। मुझे हँसता हुआ देखते तो आश्चर्य से कहते, ''तेरी छाती में हृदय है या पत्थर? तेरे पुत्र को फाँसी की आज्ञा हो गई है, उसकी मृत्यु उसके समझ खड़ी है और तू अब भी हँसता है?'' तब मैं गम्भीरता से कहता, ''मुझे अपने ईश्वर पर विश्वास है। यदि मेरा कल्याण इस बात में है कि मेरा रणवीर मेरे पास वापस आ जाए तो संसार की कोई शक्ति उसे मार नहीं सकती। और यदि मेरा कल्याण इस बात में है कि वह मेरे पास न आये तो फिर संसार की कोई शक्ति उसे बचा नहीं सकती। तब मैं रोऊँ किसलिए?''

यह है वह अवस्था जो विश्वास से उत्पन्न होती है और यह विश्वास तब उत्पन्न होता है जब प्रभु के लिए प्रेम जाग उठे। उस समय प्रभु यदि भक्त की पुकार को न भी सुने तो भक्त निराश नहीं होता, साहस के साथ कहता है–

आए हैं तेरे दर पर तो कुछ करके हटेंगे।
या वस्ल ही होगा या फिर या फिर मर के उठेंगे।।

जिनके हृदय में उस प्रेम की अग्नि जाग उठती है, उन्हें वियोग की आग भी शीतल लगने लगती है। वे हर समय उसी का चिन्तन करते हैं, उसी के गीत गाते हैं, उसी के लिए कीर्तन करते हैं, वियोग भी उनके लिए योग बन जाता है।

कहते हैं कि मजनूँ एक बार रुग्ण हो गया। रक्तचाप बढ़ा, ज्वर तीव्र होने लगा। वैद्य ने निर्णय किया कि इसका कुछ रक्त निकाल देना चाहिए। रहि को बुलाया। मजनूँ के हाथ–पाँव बाँध दिए गए। जर्राह ने रग काटने के लिए नश्तर निकाला तो मजनूँ ने पूछा, ''क्या करते हो?'' वैद्य ने कहा, ''नश्तर लगायेंगे तुम्हें।'' मजनूँ ने चिल्लाकर कहा, ''ठहरो! ऐसा न करो,

नश्तर न लगाओ।' वैद्य बोले, ''अरे! मजनूँ और नश्तर से भयभीत! लैला–लैला कहता हुआ तू जंगलों में घूमता–फिरता है, सर्दी से नहीं डरता, शेरों से नहीं डरता, पशुओं से नहीं डरता और इस नश्तर से डर रहा है?'' मजनूँ ने कहा, ''मैं नश्तर से नहीं डरता वैद्य जी! एक और बात से डरता हूँ। मेरे हृदय में, मेरे प्रत्येक श्वास में, और रक्त के प्रत्येक बिन्दु में लैला रहती है। यदि उसे यह नश्तर लग गया तो मैं क्या करूँगा? इसलिए रहने दो ज्वर को। मुझे मरना स्वीकार है परन्तु लैला को घायल करना नहीं।''

यह है उस व्यक्ति की अवस्था जिसमें प्रेम की अग्नि जल उठती है। ईश्वर के लिए वह अग्नि प्रज्वलित होती है तो फिर हर ओर वही दिखाई देता है, भक्त हर स्थान पर उसे खोजता है, उसको पुकारता है।

परन्तु यह ईश्वर और प्रत्येक स्थान की बात कुछ विचित्र–सी है। वह दिखाई देता है पर दिखाई नहीं देता–

बे–हिजाबी यह कि हर सूरत मे जलवा आशकार।
उस पै घूँघट यह है सूरत आज तक नादीदा है।

प्रत्येक रूप में वह है, फिर भी उसका रूप अदृष्ट है। इसलिए कि बाहर की इन आँखों से वह दिखाई नहीं देता। दर्शन होता है उसका अवश्य, परन्तु दृष्टिवाले को होता है–

दीदार की तलव के तरीकों से वेख़बर!
दीदार की तलव है तो पहले निगाह माँग।।

और कौन–सी दृष्टि जिससे वह मनमोहन प्रभु, आनन्द से भरपूर महाज्योति दिखाई देती है? इकबाल ने उसके सम्बन्ध में कहा–

बाहर की आँख से न तमाशा करे कोई।
हो देखना तो दीदाए–दिल वा करे कोई।।

बाहर की आँख से नहीं, भीतर की आँख से दिखाई देता है। संसार उसे बाहर की आँख से देखना चाहता है। इस अल्प–सी बुद्धि से समझना चाहता है जो मनुष्य को प्राप्त है। इस प्रकार वह दिखाई नहीं देता, समझ भी नहीं आता। वह तो अनन्त है, उसे समझेगा कौन?

जेहन में जो घिर गया लाइन्तहा क्योंकर हुआ?
जो समझ में आ गया फिर वह खुदा क्योंकर हुआ?

कभी–कभी कई लोग कहते है कि, ''तुमने ईश्वर को देखा है तो हमें बताओ कि वह कैसा है?'' मैं कहता हूँ, ''वह परम आनन्द हैं।'' तो वे पूछते है, ''यह परम आन्नद क्या है?'' मैं आश्चर्य के साथ सोचता हूँ कि इन्हें क्या बताऊँ!

एक व्यक्ति के आँख नहीं थी, पास बैठा दूसरा व्यक्ति गुड़ खा रहा था।

पहले व्यक्ति ने पूछा, ''क्या खा रहे हो?''

दूसरे ने कहा, ''गुड़।''

''गुड़ कैसा होता है?''

''मीठा।''

''मीठा क्या होता है?''

''अरे भाई, जैसे मिश्री मिठी होती है।''

''मिश्री कैसी मीठी होती है।''

''जैसे बताशे होते है।''

''बताशे कैसे मीठे होते हैं?''

''जैसे खाण्ड होती है।''

''खाण्ड कैसी मीठी होती है?''

दूसरे व्यक्ति ने तंग आकर कहा, ''अरे भाई, खाकर देख। मीठे का खाने से ज्ञान होता है। चखने की वस्तु है बताने की नहीं।''

यही दशा ईश्वर की भी है। उसे कोई बता नहीं सकता। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की सात अवस्थाओं को पार करके जब आदमी समाधि की अवस्था में पहुँचता है तब उसका पता लगता है। इस अवस्था पर पहुँचो, वह परम आनन्द, परम ज्योतिस्वरूप तुम्हारे समक्ष खड़ा हो जाएगा। उस आनन्द को बता नहीं सकता। कोई भी नहीं बता सकता। बाहर की आँखों से वह दिखाई नहीं देता। उसका दर्शन होता है अवश्य, परन्तु आँखों को बन्द करके होता है–

उलटी ही चाल चलते हैं दीवानगाने–इश्क।
आँखों को बन्द करते हैं दीदार के लिए।।

प्रकृति के मायाजाल में खोई हुई इन आँखों को बन्द करना आवश्यक है–

अन्दर के पट तब खुलें,
जब बाहर के पट देय।।

बाहर का दरवाजा बन्द करोगे तो अन्दर का द्वार खुलेगा और बाहर के पट बन्द करने की भावना उस समय उत्पन्न होती है जब भक्ति जागती है। नारद मुनि ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, ''पूर्ण अनुराग का, ऐसे प्यार का जिसमें और किसी का ध्यान न रहे, जिसके उत्पन्न होने के पश्चात् व्यक्ति उसी में मग्न हो जाये, नाम भक्ति है।'' भक्ति में ऐसा प्यार है जिससे अधिक प्यार कोई कर न सके। ऐसा विश्वास है जो एक क्षण के लिए भी डगमगाए नहीं, ऐसी निष्काम भावना है जिसमें कोई कपट न हो, धोखा न हो, छल न हो, प्रीतम के अतिरिक्त और किसी की इच्छा न हो। यह जानकर कि वही सब–कुछ है, रात–दिन उसके संकेत को देखना, उसकी आज्ञा पर चलना। वह सिर पर ताज रख दे, कहना कि ''तेरी इच्छा'' और सिर को धड़ से अलग कर दे तो भी कहना–

राज़ी है हम उसी में जिसमें तेरी रज़ा है।

यह है भक्ति! वियोग के साथ प्यार का रंग चढ़ जाये तो भक्ति का जन्म होता है। भक्ति और अनुराग में वास्तव में बहुत अन्तर नहीं। गुरु और पिता के लिए जो अनुराग सन्तान के हृदय में उत्पन्न होता है उसे प्रेम कहते हैं। सन्तान के लिए माता–पिता के हृदय में जो अनुराग जागता है उसे स्नेह कहते हैं और ईश्वर के लिए मानव के हृदय में जो अनुराग जन्म लेता है उसे भक्ति कहते हैं। वियोग और प्यार से भरपूर भक्ति की यह भावना जब उत्पन्न होती है, तब मनुष्य की एक विचित्र दशा होती है; उसके हृदय में अशान्ति होती है, परन्तु ऐसी जिसको वह स्वयं भी समझ नहीं पाता–

अपनी हालत का कुछ एहसास नहीं है मुझको।
मैंने औरों से सुना है कि परेशाँ हूँ मैं।।

ऐसी अवस्था होती है उसकी–

कहते हैं, जीते हैं उम्मीद पै लोग।
हमको जीने की भी उम्मीद नहीं।।

जीवन भार प्रतीत होने लगता है। एक विचित्र उदासी– छा जाती है मनुष्य के मन पर, परन्तु उस उदासी, अशान्ति और घबराहट में भी अद्भुत नशा–सा रहता है।

मेरी जिन्दगी पै न मुस्करा,
मुझे जिन्दगी का अलम नहीं।
जिसे तेरे गम से हो वास्ता,
वो ख़िज़ाँ बहार से कम नहीं।।

शेष अगले अंक में....

वृक्षों में आत्मा का ज्ञातृत्व गुण नहीं है

● हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

आर्यजगत् के 26 जुलाई से 1 अगस्त 2015 के अक में स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक लिखे हैं कि वृक्षों में यदि जीवन है तो आत्मा भी है।

वृक्षों में प्राण की क्रिया होती है और वह प्राण उसे भूमि, जल, वायु तथा सूर्य के किरणों से प्राप्त होता है, तभी वह अपने बीज के गुणानुसार मूल द्वारा परमाणुओं को भूमि आदि से प्राप्त कर फूलते–फलते रहते हैं।

खींचना, फैलना, बढ़ना, सिकोड़ना आदि गुण सब वृक्षों में पाये जाते है। कोई भी शरीरधारी प्राणी 'कार्बनडाइऑक्साइड' अशुद्ध वायु को ग्रहण नहीं करता, आक्सीजन शुद्ध वायु को ग्रहण करता है। शरीरधारी प्राणियों में प्राण का केन्द्र हृदय है, उसी से उनमें प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान की क्रिया से रस, रक्तादि बनते हैं– दशों इन्द्रियों के डिजाइन भी 'ईश्वरीय नियम' द्वारा प्राणों से ही बनते हैं जिनका प्रयोग सूक्ष्म शरीर के साथ 'आत्मा' करता है। प्रश्नोपनिषद् में साफ लिखा है:–

'एव हि दृष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ताविज्ञानात्मा पुरुषः।

निश्चय ही यह देखने वाला, स्पर्श करने वाला, सुनने वाला, सूंघने वाला, चखने वाला, मनन करने वाला, जानने वाला, कर्म करने वाला, ज्ञान (विद्याध्ययन) करने वाला जीवात्मा है।

आत्मा के ये सारे गुण शरीर के सम्बन्ध से सर्वश्रेष्ठ (प्राणी) मनुष्य में ही पाये जाते हैं। अन्य योनियों के शरीर धारियों में एक या दो इन्द्रियां लुप्त रहती हैं।

स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर द्वारा बने साधनों को आत्मा ही उनसे सुख–दुःखों को मन और शरीर द्वारा बोध एवं भोग करता है।

ऋषि दयानन्द के शब्दों में– "जब मृत्यु होती है तब सब कोई कहते हैं कि जीव निकल गया, यही जीव सबका प्रेरक, सबका धर्ता, साक्षी कर्ता, भोक्ता कहाता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्त्ता, भोक्ता नहीं तो उसे जानो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है, क्योंकि बिना जीव के ये सब जड़ पदार्थ हैं, उनको सुख दुःख का भोग व पाप पुण्य कर्तृत्व कभी नहीं हो सकता। हाँ इनके सम्बन्ध से जीव पाप पुण्यों का कर्त्ता और सुख दुःखों का भोक्ता है।'

ऋषि ने लिखा है–**"पृषदितिभक्ष्यान्नोपलक्षम्"** ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, सृष्टि विद्या विषय–यजुर्वेद, मं. 31, 6 का भाष्य– 'पहले पृषद नामक भक्ष्यान्न–वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं। यदि वृक्ष–वनस्पतियाँ, फल, मूल, कन्द में आत्मा अर्थात् जीव होता तो ऋषि उन्हें कभी नहीं खाते।

अथर्ववेद– 10 सू. 8 मं. में कहा गया है कि–**'स्कम्भइदंसर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्चयत'** ।। 2।। परमेश्वर में सब आत्मषत् जगत वर्तमान है और जो चेतन के समान स्वांस लेते हैं, वे आंख मूदे हुए जड़ (के समान) है।

अथर्ववेद में क्लोरोफिल का वर्णन मिलता है। इसमें क्लोरोफिल के लिये 'अदि' (रक्षक तत्व) शब्द आया है, इसकी विशेषता बताई गई है, इसके कारण ही वृक्ष वनस्पतियों में हरियाली रहती है।

अविर्वैनाम देवता ऋतेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेण इमं वृक्षा हरिता हरितराजः।।

अथर्व 10, 8, 3। अथर्ववेद का कथन है कि वृक्षों में प्राण हैं और सांस लेते हैं।

''महद् ब्रह्मयेन प्राणन्ति वीरुधः। अथर्व– 1,32,1"

जो उद्भिज जल में होते हैं, वे जल से द्रवीभूत गैस को ग्रहण करते हैं। कोई भी उद्भिज वायु मण्डल से नाइट्रोजन गैस ग्रहण नहीं करते, मिट्टी अथवा जल से ही वे अपने मूल द्वारा (लवण युक्त) नाइट्रोजन तत्व को ग्रहण करते हैं।

अमरबेल लता जो दूसरे वृक्षों पर फैलती है, उसमें जो झूलती लतायें होती हैं– उसे वायवीय मूल कहते हैं– उसी मूल के द्वारा वायु से जलीय वाष्प ग्रहण करके

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

'क्या ईश्वर है?'

● मनमोहन कुमार आर्य

क्या ईश्वर है, है या नहीं? इस युक्ति व तर्क से देखते हैं कि यथार्थ स्थिति क्या है? इससे पूर्व कि ईश्वर की चर्चा करें हम पहले मनुष्य जीवन की चर्चा करते हैं। लोग हमसे पूछते कि आप कौन हैं? मैं उत्तर देता हूँ कि मैं मनमोहन हूं। यहां मैं स्वयं अर्थात् अपने अस्तित्व को स्वीकार कर रहा हूं और यह नहीं कह रहा हूं कि मैं नहीं हूं, मैं यह कह रहा हूं कि मैं हूँ और मेरा नाम मनमोहन है। अब यदि मेरा अस्तित्व है तो यह अस्तित्व कब व कैसे अस्तित्व में आया? **हम समझते हैं कि संसार में किसी मनुष्य को यह भ्रान्ति नहीं है कि उसका अस्तित्व नहीं है।** हमारा अस्तित्व कब व कैसे उत्पन्न हुआ, इस पर विचार करने पर पता लगता है कि अमुक तिथि को हमारा जन्म हुआ था। यह वह तिथि है जिसका ज्ञान हमें अपने माता–पिता से व पाठशाला आदि के अभिलेख से हुआ है जिसे हमारे माता–पिता अंकित कराते हैं। माता–पिता से जन्म से पूर्व हम माता के गर्भ में रहते हैं। ज्ञान–विज्ञान से ज्ञात होता है कि वहां भी हमारा प्रवास हिन्दी महीनों के अनुसार पूरे 10 माह और अंग्रेजी के महीनों के अनुसार लगभग 9 माह का होता है। **इस 10 माह व 9 माह से पूर्व हमारा अस्तित्व था या नहीं?** विज्ञान के पास इसका समुचित उत्तर नहीं है। **विज्ञान का एक नियम है कि कारण के बिना कार्य नहीं होता अर्थात् कार्य के लिए कारण की आवश्यकता है।** यदि माता के गर्भ में हम आये तो दो संभावनायें होती हैं कि या तो कोई एक अत्यन्त सूक्ष्म तत्व कहीं से अर्थात् आकाश या वायु से आया या फिर वह वहीं उत्पन्न हुआ हो। इसके लिए हमें अपने शरीर पर ध्यान देना होगा। जीवित अवस्था में हमारा शरीर दो भिन्न प्रकृति वाले पदार्थों का समन्वित रूप होता है। एक चेतन तत्व है और दूसरा जड़ तत्व। यह जड़ तत्व तो अन्नमय होता है, जो माता व हमारे अन्नमय भोजन का परिणाम है और दूसरा चेतन तत्व एक अत्यन्त सूक्ष्म तत्व जो जन्म से मृत्यु पर्यन्त एक समान व एक आकार प्रकार वाला रहता है। इस चेतन तत्व का स्वरूप ज्ञान व कर्म अथवा गति है जो कि जड़ पदार्थों के स्वरूप वा गुणों का परिणाम है और दूसरा चेतन तत्व एक अत्यन्त सूक्ष्य तत्व है जो जन्म से मृत्यु पर्यन्त एक समान व एक आकार प्रकार वाला रहता है। इस चेतन तत्व का स्वरूप ज्ञान व कर्म अथवा गति है जो कि जड़ पदार्थों के स्वरूप वा गुणों से सर्वथा भिन्न है। अन्न जहां प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का परिणाम है वहां यह सूक्ष्म चेतन तत्व आत्मा प्रकृति का परिणाम न होकर इससे सर्वथा भिन्न व पृथक तत्व है। इस आत्मा के लिए ही हमें हमारा यह मनुष्य शरीर मिला हुआ अनुभव होता है। इसका निर्माण कैसे हुआ इसका उत्तर किसी के पास नहीं। वैज्ञानिकों ने भी इस पर ध्यान नहीं दिया या यों कहिये कि यह विज्ञान का विषय ही नहीं है। यह इस कारण कि विज्ञान तो भौतिक पदार्थों का अध्ययन कर उसका ज्ञान कराता है। शरीर में चेतन तत्व जिसे आत्मा कहते हैं, वह अभौतिक व चेतन है जो विज्ञान के अध्ययन से परे है।

इस चेतन तत्व जीवात्मा के अध्ययन के लिए हमें वेद और उपनिषदों की शरण लेनी पड़ती है जहां जीवात्मा को शाश्वत व सनातन अर्थात् नित्य कहा गया है। यह नित्य पदार्थ अनादि, अनुत्पन्न होने के कारण अमर व अविनाशी होता है अर्थात् इसका अस्तित्व हमेशा बना रहेगा। शरीर की मृत्यु हो जाने के बाद भी यह जीवात्म तत्व शरीर से निकल कर आकाश व वायु में रहता है। माता में गर्भाधान के समय यही तत्व पिता के शरीर से माता के शरीर में आकर 10 महीनों तक भौतिक शरीर से युक्त, सम्पन्न व पुष्ट होकर जन्म लेता है। जन्म के बाद इसमें वृद्धि देखी जाती है और फिर ह्रास का क्रम चलता है जिसे वृद्धावस्था कहते हैं और इसके बाद पुराने वस्त्रों की भांति यह जीवात्मा शरीर को त्याग कर कर्मानुसार एक अन्य चेतन सत्ता ईश्वर की प्रेरणा से नये शरीर में चला जाता है। जीवात्मा से रहित शरीर शव कहलाता है जिसका दाह संस्कार कर इसे इसके मूल प्राकृतिक व भौतिक पंचतत्वों में विलीन कर दिया जाता है। जब तक जीवात्मा शरीर में रहता है तब तक जीवन रहता है। जब शरीर से निकलता है उस समय भी यह आंखों से दिखाई नहीं देता जिसका एक ही कारण है कि यह अत्यन्त सूक्ष्म तत्व है जो आंखों के देखने की क्षमता व सामर्थ्य में नहीं है। वेदों, दर्शन व उपनिषद आदि में उपलब्ध इस जीवात्मा की अनेक प्रकार से पुष्टि होती है जिससे आत्मा का प्रकृति से पृथक् अस्तित्व युक्ति, तर्क व वैदिक शास्त्रों से सिद्ध होता है।

यह विज्ञान का सिद्धान्त है कि यह सृष्टि प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं से मिलकर बनी है। अब दो प्रश्न हैं जिनका समाधान हो जाने पर ईश्वर के अस्तित्व का निर्णय हो जायेगा। प्रश्न यह है कि इस सृष्टि के परमाणुओं को किस सत्ता ने एकत्रित कर ज्ञान व बुद्धि पूर्वक इसके परमाणुओं से भिन्न भिन्न पदार्थ सूर्य, चन्द्र व पृथिवी तथा पृथिवीस्थ सभी पदार्थों को बनाया है। हम यह भी जानते हैं कि हम जिस सौर मण्डल में है ऐसे अनन्त सौर मण्डल इस ब्रह्माण्ड में हैं। इस ब्रह्माण्ड का परिमाण अनन्त हैं। इससे एक ऐसी सत्ता का होना सिद्ध होता है जिसने प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को ज्ञान व शक्ति से बुद्धिपूर्वक एकत्रित कर इस संसार को रचा है। **यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि बिना रचयिता के कोई रचना नहीं होती।** अतः यह ब्रह्माण्ड ऐसी ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, धार्मिक, दयालु, न्यायकारी आदि गुणों से युक्त सत्ता से अस्तित्व में आया है। यदि वह सत्ता न होती तो परमाणु कदापि स्वयं जुड़कर वर्तमान ब्रह्माण्ड का निर्माण नहीं कर सकते थे क्योंकि प्रकृति व हमारी सृष्टि एक जड़ पदार्थ है जिसमें बुद्धि व ज्ञान का सर्वथा अभाव है। इस प्रकार से संसार में तीन तत्व व पदार्थ– ईश्वर, जीवात्मायें एवं प्रकृति सिद्ध हो रहे हैं जिनका अस्तित्व है। ये अनादि व नित्य हैं, ये न स्वयं बने हैं और न इन्हें किसी ने बनाया है, कारण कि इन तीन सत्ताओं से भिन्न अन्य किसी सत्ता का अस्तित्व ही नहीं है। अतः यह सृष्टि सृष्टिकर्ता के गुणों से सम्पन्न सत्ता=ईश्वर के द्वारा बनती व बिगड़ती रहती है। इनका नियंत्रक व स्वामी यही सत्ता ईश्वर है। **इसी ईश्वरीय सत्ता ने इस पृथिवी व ब्रह्माण्ड के अन्य लोकों में हमारी पृथिवी के समान मनुष्यादि सभी प्राणियों को बनाया है और वही सबका पालनकर्त्ता है।** इससे यह रहस्य भी समझ में आ जाता है कि नित्य जीवात्मा कर्म बन्धन में फंसा हुआ है। कर्मानुसार जन्म लेकर यह भिन्न भिन्न योनियों को प्राप्त होता है वहां कर्म योनियों में कर्मों को करता व उनका फल भोगता है तथा भोग योनियों में जन्म लेकर केवल भोगों को भोग कर मृत्यु के बाद कर्म संचय अर्थात् प्रारब्ध के अनुसार नये–नये जन्म प्राप्त करता रहता है। ये सभी जन्म स्वतः या अपने आप नहीं होते, इनको देने वाला सत्य व ज्ञान स्वरूप ईश्वर है जिसका सत्य–चित्त–स्वरूप आनन्द स्वरूप है।

कार्य कारण सिद्धान्त की चर्चा हम पूर्व कर चुके हैं। **यह सृष्टि व ब्रह्माण्ड तथा सभी प्राणी कार्य हैं जिसका निमित्त कारण केवल परमात्मा ही सिद्ध होता है।** यदि परमात्मा वा ईश्वर को नहीं मानेंगे तो हमें सृष्टि व मानव आदि प्राणियों के अस्तित्व से भी इनकार करना होगा, इसलिये कि ये सभी कार्य हैं और कोई भी कार्य बिना निमित्त कारण के नहीं होता। यह ऐसा ही है कि जैसे बिना माता–पिता के सन्तान नहीं हो सकती या बिना इंजीनियर, वैज्ञानिक, उद्योग, मशीनों, मजदूरों व बनाने के समान के बिना कोई पदार्थ कम्प्यूटर, मोबाइल, रेल, जहाज, वस्त्र आदि नहीं बन सकते। **ईश्वर इस भौतिक व अभौतिक जगत का प्रमुख निमित्त कारण है।** यह सृष्टि व प्राणि जगत उसी की रचना व कला **art** है। **इस विवेचन से ईश्वर की सत्ता सिद्ध हो गई है। क्या ईश्वर है? इसका उत्तर मिल गया है कि ईश्वर है और वह सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। यह ईश्वर ही संसार के हम सभी मनुष्यों का उपासनीय व भक्ति करने के योग्य है। इस उपासना व भक्ति से ही हमें जीवन के लक्ष्य धर्म–अर्थ–काम व मोक्ष की प्राप्ति होती है वा होगी।** इस चर्चा के साथ ही हम इस लेख को विराम देते हैं।

196 चुक्खूवाला–2, देहरादून–248001
फोन – 09412985121

वैदिक प्रार्थना

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद
भुवनानि विश्वा।
यत्रा देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त।।
यजु. 32.10

Thou art our father,
our friend, our anchor
and our creator.

Thou knowest whatever is
happening
And one can reach the
Destination only with Your grace.

तू हमारा बन्धु प्यारा, तू हमारा जन्मदाता
तू सहारा, तू अधारा, तू हमारा है विधाता।
विश्व में जो कुछ जहां है, ज्ञान उस सबका तुझे है
लक्ष्य तक वह ही पहुंचता राह तू जिसको दिखाता।

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका– स्वार्थ की व्याख्या करें। कृपया तीन–चार व्यावहारिक उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

समाधान– स्वार्थ का मतलब होता है– केवल अपने लाभ की बात सोचना, दूसरों के लाभ और भले की बात नहीं सोचना। इसको बोलते हैं 'स्वार्थ'। यह मोटी सी परिभाषा है। पहला उदाहरण – खाने का नंबर आया, तो मुझे खाना मिलना चाहिये, दूसरों को मिले या न मिले, उसकी परवाह नहीं है। यह स्वार्थ की बात है। सोने की बारी आयी, मेरा बिस्तर बढ़िया होना चाहिये, मेरी जगह साफ–सुथरी, पंखे के नीचे होनी चाहिए, दूसरे को पंखे की हवा मिले या न मिले, मुझे कोई मतलब नहीं। यह स्वार्थ की बात है। धंधे व्यापार के क्षेत्र में – मेरी दुकान चलनी चाहिए, दूसरे की चले न चले। यह स्वार्थ की बात है। तो ऐसे आप कितने ही उदाहरण बनाते जायें। खाने में, पीने में, घूमने में, सोने में, जागने में, सुविधा में, बिस्तर में, कपड़ों में। **जब केवल व्यक्ति अपने ही मतलब की बात सोचता है, अपने ही लाभ की बात सोचता है, दूसरों के लाभ और भले लिये कुछ नहीं सोचता, तो इसको स्वार्थ कहते हैं।** जब व्यक्ति अपने लिये और दूसरों के लिये, यानी दोनों के लिये सोचता है, औरों को भी मिले, मुझे भी मिले, तो वो ठीक बात है, वो स्वार्थ की बात नहीं है, वो परोपकार की बात है। मेरा भी काम चले, दूसरों का भी चले। मैं पढ़ूँ, दूसरे भी पढ़ें। मैं भी सुखी रहूँ, दूसरे भी सुखी रहें। मुझे भी खाने को मिले, दूसरों को भी मिले। मुझे भी सोने की जगह मिले, दूसरों को भी मिले। मैं भी दुःख से छूटूँ, दूसरा भी छूटे। ऐसे सोचना चाहिये।

शंका–मोक्ष में आत्मा के साथ में मन, बुद्धि, चित्त, कारण शरीर आदि रहते हैं या नहीं?

समाधान– मोक्ष में ये प्राकृतिक शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, इन्द्रियाँ, यह स्थूल शरीर, कोई भी साथ में नहीं रहता। प्रकृति से बना कोई भी शरीर मोक्ष में नहीं रहता। कारण शरीर भी प्राकृतिक है। सत्त्व, रजस और तमस जो मूल प्रकृति है, उसका नाम ही कारण शरीर है। वो भी साथ नहीं रहता। कोई प्राकृतिक शरीर साथ नहीं रहता मोक्ष में। जीवात्मा के 24 शुद्ध गुण सत्यार्थ–प्रकाश के नौवें समुल्लास में लिखे हैं। वो साथ रहते हैं। और ईश्वर का आनंद मिलता है। ईश्वर के मुक्तात्मा के साथ होता है। बस मोक्ष में इतना ही होता है। प्रकृति या प्राकृतिक संबंध नहीं होता। **जीवात्मा मुक्ति में परमात्मा की शक्ति से सुनेगा, देखेगा, सारे काम करेगा।** जीवात्मा और परमात्मा दोनों अलग–अलग हैं। दोनों की शक्ति अलग है। ईश्वर की शक्ति के सहयोग से **'मुक्त–आत्मा'** सारे काम करता है। मोक्ष में प्रकृति वाला मन नहीं रहता है। सत्यार्थ प्रकाश का नौवां समुल्लास पढ़िये। उसमें जीवात्मा की चौबीस शक्तियाँ लिखी हैं। उसमें जीवात्मा की एक मनन शक्ति भी है। वो मनन शक्ति से मनन करेगा, घ्राण शक्ति से सूँघेगा, दर्शन शक्ति से देखेगा, श्रवण शक्ति से सुनेगा। पर उसकी अपनी शक्ति बहुत कम है। **जीवात्मा केवल अपनी शक्ति से मुक्ति में सारे काम नहीं कर सकता। उसमें ईश्वर की शक्ति और साथ उसके जुड़ेगी।**

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

स्व+अभिमान = स्वाअभिमान

● कृष्ण मोहन गोयल

दो शब्द हैं, एक है अभिमान तथा दूसरा है स्वाभिमान। दोनों का स्वरूप लगभग एक–सा है। अभिमान में 'स्व' प्रत्यय जोड़ देने से स्वाभिमान बन जाता है परन्तु अर्थों में भिन्नता है। यदि यदि सही अर्थों में कहा जाये तो भिन्नता ही नहीं बल्कि विरोध भी है। अभिमान में अपने को दूसरे से श्रेष्ठ समझने का भाव बोध होता है जबकि स्वाभिमान में अपने पर गर्व करने का भाव बोध होता है। अभिमान में एक प्रकार की अकड़ होती है जबकि स्वाभिमान में सौम्यता होती है, विनम्रता होती है।

चरक संहिता के अनुसार अभिमान की एक मानसिक रोग की श्रेणी में गणना की गयी है तथा स्वाभिमान को एक स्वस्थ मस्तिष्क का परिचायक माना गया है। विचारणीय है कि इस संसार में एक से एक श्रेष्ठ, सुन्दर, धनवान, योग्य, प्रतिभाशाली, स्वस्थ तथा मेधावी है। फिर हर किसी का एक क्षेत्र होता है। हर कोई अपने क्षेत्र में सुन्दर, धनवान, योग्य, प्रवीण, प्रतिभाशाली, मेधावी है। हम समाज में किस–किस से तुलना करेंगे? व्यक्ति आजीवन दुखी ही रहता है और दुःख ही भोगता रहता है। इसलिए कभी भी दूसरे से अपने को श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिए। हां, अपने को इतना योग्य बनाओ कि समाज को तुम्हारे ऊपर गर्व हो। इसलिए अभिमानी न बन कर स्वाभिमानी बनो। विश्वविजेता सिकन्दर महान एक अभिमानी राजा होने के कारण आज भी तिरस्कृत है।

अभिमान एक ऐसा शब्द है जिसको समाज गलत मानता है और उसे यह शब्द स्वीकार्य नहीं है। इसी कारण अभिमान शब्द में 'स्व' जोड़ा गया है। अभिमान का अर्थ होता है 'अहंकारी' अर्थात् जिसको अपने ऊपर गर्व नहीं, अहंकार है। स्वाभिमानी व्यक्ति वही होता है जो स्वयं को भली भांति पहचानता हो। स्वाभिमानी व्यक्ति में न तो स्व की भावना होती है और न ही अभिमान की। ऐसे व्यक्ति से समाज का प्रत्येक व्यक्ति जुड़ना चाहता है। जबकि अभिमानी व्यक्ति से समाज घृणा करता है और दूर ही रहना चाहता है क्योंकि वह अहंकार से युक्त होता है और समाज मे ऐसे व्यक्ति को सदैव हीन भावना से देखा जाता है। समाज में उसके प्रति न तो किसी प्रकार का आदर होता है और न ही सम्मान होता है।

स्वाभिमानी व्यक्ति की तो बात ही कुछ और होती है। वह प्रत्येक पग पर विनम्र होता है। स्वाभिमानी हमेशा 'सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय' को ही चरितार्थ करता है और 'योगक्षेम' का अनुपालन करने के लिए सदैव तत्पर रहता है। जबकि अभिमानी व्यक्ति सदैव अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध से ग्रसित रहता है। हमारा दूसरे से श्रेष्ठ होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। हर कोई अपने स्थान पर श्रेष्ठ होता है, अनूदित होता है। इस संसार में कोई किसी से ऊपर नहीं है और न कोई किसी से नीचे है। एक छोटी सी घास में उगा हुआ फूल भी अपना उतना ही महत्व रखता है जितना कि आकाश में स्थित बड़ा से बड़े तारा अपना महत्व रखता है। दोनों का अपने–अपने स्थान पर समान ही मूल्य है। रहीम कवि ने कहा भी है–

स्वाभिमानी व्यक्ति की तो बात ही कुछ और होती है। वह प्रत्येक पग पर विनम्र होता है। स्वाभिमानी हमेशा 'सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय' को ही चरितार्थ करता है और 'योगक्षेम' का अनुपालन करने के लिए सदैव तत्पर रहता है। जबकि अभिमानी व्यक्ति सदैव अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध से ग्रसित रहता है। हमारा दूसरे से श्रेष्ठ होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। हर कोई अपने स्थान पर श्रेष्ठ होता है, अनूदित होता है। इस संसार में कोई किसी से ऊपर नहीं है और न कोई किसी से नीचे है। एक छोटी सी घास में उगा हुआ फूल भी अपना उतना ही महत्व रखता है जितना कि आकाश में स्थित बड़ा से बड़े तारा अपना महत्व रखता है। दोनों का अपने–अपने स्थान पर समान ही मूल्य है। रहीम कवि ने कहा भी है–

रहिमन देख बडेन को लघु न दीजिये डार।
जहां काम आवे सुई कहा करे तलवार।।

अर्थात् जो कार्य एक छोटी सी सुई कर सकती है वह कार्य तलवार द्वारा नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार जो कार्य तलवार द्वारा किया जा सकता है उस कार्य को सुई द्वारा नहीं किया जा सकता है। सबका अपना–अपना स्थान है, अपना–अपना महत्व है।

कबीर, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, रसखान, मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, पं. रामचन्द्र शुक्ल, रामधारी सिंह 'दिनकर', हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा जैसे लेखकों, महात्मा गौतम बुद्ध, महर्षि स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज जैसे सन्तों और महापुरुषों, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह जैसे शौर्यवान पुरुषों, महात्मा गांधी, सुभाषचन्द बोस, स्टालिन, मुसोलिनी, चर्चिल जैसे महानुभावों को स्वाभिमानी व्यक्तियों की श्रेणी में गिना जाता है और समाज उनको आज भी सम्मान और आदर की दृष्टि से देखता है जबकि रावण, दुर्योधन, हिटलर जैसे व्यक्तियों की गणना संसार में आज भी अभिमानी व्यक्तियों में की जाती है।

क्या आपने कभी अपने विषय में भी परिकल्पना की है, मनन किया है कि आप स्वयं किस श्रेणी में आते हैं? यदि स्वाभिमानी हैं तो एक श्रेष्ठ व्यक्ति हैं और अभिमानी तो शीघ्र ही अपने में परिवर्तन लाइये और स्वाभिमानी बनिये। विश्व आपका सम्मान करेगा, स्वागत करेगा।

113–बाजार कोट
अमरोहा 244221

जीवन का उद्देश्य : पुरुषार्थ चतुष्टय

तीसरा पुरुषार्थ–काम

● डॉ. महेश विद्यालंकार

मनुष्य–जीवन के उद्देश्यों में तीसरा पुरुषार्थ काम माना गया है। काम शब्द का प्रयोग इच्छाओं और काम–वासना के अर्थ में होता है। जहाँ तक काम का अर्थ इच्छा है, उसका बहुत महत्त्व है। मनु महाराज कहते हैं–

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।।

भाव यह है कि काम सभी श्रेष्ठ कर्मों का आधार है। काम अर्थात् इच्छा नहीं होगी तो कोई श्रेष्ठ कर्म भी नहीं होगा। परमात्मा ने कामना की, तभी सृष्टि की रचना हुई। स्त्री–पुरुष के आकर्षण और आसक्ति को भी **'काम'** कहा गया है। जब परिवार में कोई श्रेष्ठ कर्म जैसे– यज्ञ, पूजा, सत्संग आदि होता है, तब पुरोहित यजमान को आशीर्वाद देते हैं– **'सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः'** – हे यजमान! तुम्हारी श्रेष्ठ इच्छाएँ और कामनाएँ पूर्ण हों। काम सृष्टि के मूल में है। इसी से संसार की रचना आगे बढ़ती है कामभाव गृहस्थी–धर्म व सन्तानोत्पत्ति का मूलाधार है। सांसारिक कामनाओं और इच्छाओं से सृष्टि गतिशील है। सन्तानोत्पत्ति का आधार गृहस्थ है। गृहस्थ में कामवासना के शमन की व्यवस्था है। सांसारिक, भौतिक और इन्द्रियसुखों की पूर्ति का साधन गृहस्थाश्रम बताया गया है। जब तक व्यक्ति भोगों को भोग नहीं लेता है, तब तक भोगों की वासना, ललक व इच्छा बनी रहती है। इसीलिये भारतीय जीवनशैली में आम आदमी के लिये गृहस्थ की प्राकृतिक पारिवारिक सामाजिक तथा व्यवस्था दी गई है। गृहस्थ में मन को भलीभाँति जीता जा सकता है। गृहस्थाश्रम से गुजरे बिना आम मनुष्य अपूर्ण रहता है। जीवनचक्र को सरल व सुखदायी बनाने के लिये आश्रम–व्यवस्था उपयोगी है। यह मध्यममार्ग कहलाता है। मर्यादित, संयमित, धर्मानुकूल काम–वासना की पूर्ति का गृहस्थ में विधान है। आदर्श परम्परा तो यही रही है कि मात्र सन्तानोत्पत्ति के लिये कामभोग किया जाए। बाकी समय में इसे वर्जित बताया गया है। गृहस्थ में इस महाबली काम को जीता जा सकता है। गृहस्थ द्वारा ही कामवृत्ति का शमन होता है। यदि गृहस्थ की व्यवस्था न होती तो काम न जाने क्या–क्या रूप दिखाता है और कहाँ–कहाँ भटकाता।

भारतीय जीवनपद्धति मे काम के रूपान्तरण का चिन्तन है। जब कामवासना स्नेह, वात्सल्य, ममत्व, देश, धर्म, जाति, सेवा, सहानुभूति आदि में रूपान्तरित हो जाएगी, तब इसकी तीव्रता, आकुलता तथा पागलपन घटने लगेगा। कामवासना की जितनी निवृत्ति होती जाएगी, उतना ही मन शान्त, एकाग्र एवं प्रभुमार्ग की ओर बढ़ने लगेगा। कामवासना को जीतना आसान नहीं है। जब कामवासना का आक्रमण होता है, उस समय बुद्धि, विवेक, विचार, लोकलज्जा आदि काफूर हो जाते हैं। कहा है– **'कामातुराणां न भयं न लज्जा'।** वही इसको जीत पाता है, जिसके अन्दर विचार, विवेक, बुद्धि और वैराग्य जागा होता है। जिसने भोगों की वास्तविकता को देख और समझ लिया है, वही इस पर विजय पा सकता है। वैदिक चिन्तन संसार को संदेश देता है– कामवासना वह आग है, जिसमें जितना डालते जाओ, सब स्वाहा होता जाएगा। जितना विषयों को भोगते जायेंगे, उतनी ही भोगने की और–और तीव्र इच्छा बढ़ती जाएगी। कामवासना की ज्वाला को आज तक कोई शान्त व पूर्ण नहीं कर सका है। कामवासना को फैलाओ नहीं, उसका धीरे–धीरे शमन करते जाओ। इसके लिये आदर्श परम्परा रही है कि एक पुरुष और एक नारी मिलकर पारस्परिक कामभाव को सीमित कर लें। इसी को पतिव्रत और पत्नीव्रत कहा गया है। जो इस आदर्श, मर्यादा तथा नियम का पालन नहीं करते हैं, उनका गृहस्थजीवन कलह, दुःख एवं अशांति में बीतता है। ऐसे लोग स्वयं भी खराब होते हैं और समाज–व्यवस्था को भी विकृत करते हैं। आज कामवासना की आग बड़ी तेजी से समाज में बढ़ व फैल रही है। इसके परिणामस्वरूप हम प्रतिदिन देखते हैं कि अखबार, दूरदर्शन आदि विकृत सूचनाओं से भरे पड़े हैं। लोगों के दाम्पत्य जीवन टूट तथा बिखर रहे हैं। अधिकांश हत्याएँ धन के लोभ और कामवासना के कारण हो रही हैं।

आज मानवसमाज बड़ी तेजी से अमर्यादित, विकृत, असंयमित व अनियमित भोगवासना की ओर बढ़ रहा है। इससे समाज में कामुकता, अश्लीलता, नग्नता, हिंसा तथा खुलापन आदि विकृतियाँ आ रही हैं। शास्त्र चिन्तन दे रहा है कि भोग से त्याग की ओर चलो; बहुत भोग भोग लिये, अब इनसे छुटकारा पा लो। गृहस्थ भोग लिया, उम्र ढल गई, इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं, अब भी भोगवासना शान्त नहीं हुई तो फिर कब सँभलोगे? जब कामवासना पर धर्म का अंकुश होता है तब विवेक जागता है। तभी व्यक्ति मर्यादित, नियमित, संयमित तथा व्यवस्थित भोगों को भोगता है। आम आदमी तो पशुओं की तरह अविवेकपूर्ण विषयभोगों में जीवन गुजार देते हैं। महाभारत में व्यास हाथ उठाकर और चिल्लाकर कहते हैं– "धर्मपूर्वक अर्थ और काम का उपभोग करो, नहीं तो तुम्हारा सब कुछ नष्ट–भ्रष्ट हो जायेगा। किन्तु मेरी कोई नहीं सुन रहा है।"

काम जीवन का परम लक्ष्य नहीं है। परन्तु लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है, जिससे जीवन में कोई अतृप्ति असन्तुष्टि, व अधूरी इच्छा शेष न रह जाए। अतृप्त इच्छाएँ तथा भोगवासनाएँ मनुष्य को चंचल एवं पथभ्रष्ट करती हैं। भोगवासनाओं के बीच में निकलते हुए और इससे तत्त्वबोध लेते हुए, जीवनोद्देश्य की ओर तेजी से आगे बढ़ते चलो।

भारतीय चिन्तन में 'काम' को धर्मपूर्वक, संयम व मर्यादा में बाँधकर रखा गया है। काम के भोगपक्ष को मर्यादा, प्राकृतिक तथा सामाजिक नियमों व बन्धनों में भोगने की व्यवस्था दी गई है। कामवासना मर्यादा में सृजनात्मक है। मर्यादा का उल्लंघन करते ही यह विनाशकारी बन जाती है। जैसे नदी दो किनारों के बीच में बहती हुई कल्याणकारी है। यदि किनारों को तोड़ दे तो यह विनाशकारी बन जाती है। ऐसे ही वैदिक विचारधारा सेक्स का दमन नहीं, प्रत्युत उदात्तीकरण की बात कहती है। कामवासना बढ़ जाने से मनुष्य के मन, बुद्धि व इन्द्रियाँ विक्षिप्त हो जाते हैं। काम यदि धर्म और मोक्ष दोनों किनारों के बीच में मर्यादित व संयमित रहे, तो मंगलकारी व सुखकारी है। अमर्यादित एवं अधर्मयुक्त भोगवासना विनाश और पतन का कारण बन जाती है। जो विषयों को असीम भोगते हैं, उनके तन और मन दोनों बिगड़ जाते हैं। मोक्षमार्ग में सबसे पहले जन्म–मरण कराने वाली कामवासना पर अंकुश लगाया जाता है।

काम और मन

काम का सम्बन्ध मन के साथ है। इच्छाओं तथा कामनाओं का आधार भी मन ही है। मन की गति बड़ी विचित्र है। इसके खेल बड़े अजब हैं। इसको समझना और ठीक चलाना बड़ा कठिन काम है। कामभोग और भौतिक इच्छाओं का मूल मन ही है। सबसे पहले मन में उनका उदय होता है। सारे पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म मन से ही होते हैं। मन की पवित्रता धर्माचरण से संभव है। मन बुद्धि की पकड़ में आता है। शरीर में आत्मा के बाद बुद्धि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बुद्धि ब्रेक है। ब्रेक के खराब होते ही अनर्थ हो जाता है। बुद्धि के भ्रष्ट होते ही मन अनर्थ कर जाता है। हमारी सारी प्रार्थनाओं में सुबुद्धि की प्रार्थना की गयी है–

अग्ने नय सुपथा।
प्रभु हमें सन्मार्ग पर ले चलो।
धियो यो नः प्रचोदयात्।

परमात्मन्! हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए। यदि बुद्धि ठीक है तो मनुष्य गलत सोच–विचार तथा दुष्कर्मों से बच जाएगा और मन संयम में बना रहेगा। अतः मन के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है।

हम जो भोजन करते हैं, उसका मोटा भाग मलमूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। भोजन के पचे भाग से रक्त, मांस, रस आदि बनते हैं। इसके पश्चात् जो भोजन का सबसे सूक्ष्म भाग बनता है, वह मन कहलाता है। इसीलिए कहा गया है–

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'
भोजन शुद्ध है तो मन पवित्र होगा।
जैसा अन्न, वैसा मन।

भारतीय चिन्तन में भोजन की सात्त्विकता, पवित्रता और स्वच्छता आदि पर विशेष बल दिया गया है। इन्द्रियों के माध्यम से जो कुछ भी शरीर के अन्दर जा रहा है, वह सब मन का भोजन बन जाता है। यदि टेलीविजन देखते हुए भोजन कर रहे हैं तो टेलीविजन पर जो विज्ञापन, अश्लील नृत्य, दृश्य, हिंसा, मारकाट आदि दिखाया जा रहा है, वह सभी हमारा भोजन बन जाता है। आज हम भोजनभ्रष्ट हो रहे हैं। रजोगुणी व तमोगुणी भोजन की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। इसी से मन दूषित, कलुषित एवं भोगवासना–प्रधान हो रहा है। मन को ठीक करना है तो भोजन को ठीक करो। धार्मिकता, आध्यात्मिकता तथा प्रभुभक्ति को बढ़ाना है तो पहले अपनी वृत्ति को सतोगुणी बनाओ। भोजन मनुष्य की पहचान कराता है। भोजन से मन का पता चलता है। भोजन के बारे में भारत का विशेष दृष्टिकोण रहा है। मन के बारे में सभी धर्मग्रन्थों और ऋषि–मुनियों, सन्तों, महापुरुषों आदि ने बहुत लिखा और बताया है। मन की समस्याएँ, मन के रोग तथा उलझनें बड़ी विचित्र हैं।

आज का मानवसमाज मानसिक रोगों से ग्रस्त हो रहा है। वह मन से अशान्त, बेचैन, असन्तुष्ट तथा असभ्य हो रहा है। आज के भौतिक विज्ञान ने आकाश, समुद्र, पहाड़ तथा अन्य भारी शक्तियों पर नियन्त्रण कर लिया है, किन्तु मन के संयम तथा नियन्त्रण करने में असफल हो रहा है। इसीलिए भौतिक सुखों और भोगविलास की इतनी साधन–सुविधाओं के होने पर भी मानव सुखी, प्रसन्न एवं सन्तुष्ट नहीं हो पा रहा है। मन कहीं ठहर ही नहीं पा रहा है। कपट और पाप से मन टेढ़ा होता है। धोखा करने वाले का मन अशान्त और झूठ बोलने वाले का मन परेशान रहता है। पापी मन वाले को रात को चैन की नींद नहीं आती है। कामी, क्रोधी, लोभी, शराबी आदमी का मन सदा अशान्त, अतृप्त तथा बेचैन रहता है। इसीलिये कहा गया है–

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

पृष्ठ 06 का शेष

जीवन का उद्देश्य...

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है। विषयों में फँसा मन बन्धन का कारण है। विषय–वासनाओं से हटा हुआ मन मोक्ष की ओर ले जाता है। इन्द्रियों का सम्बन्ध विषयों के साथ है। जैसे आँख का देखना, कान का सुनना, नाक का सूँघना, जिह्वा का स्वाद लेना तथा त्वचा का स्पर्श विषय है, उसी प्रकार सभी विषयों का अनुभवकर्ता मन है। इन्द्रियाँ मन की सेविकाएँ हैं। मन इन्द्रियों से अपना काम करवाता है। जो मन चाहता है, वहीं इन्द्रियाँ करती हैं। मन के ऊपर बुद्धि है, बुद्धि मन को नियन्त्रण में रखती है। बुद्धि से ही ज्ञान, विचार तथा विवेक आता है। इसीलिये **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** की प्रार्थना की जाती है। गायत्री मन्त्र बुद्धि की शुद्धि का मन्त्र है। यह बीज मन्त्र है। भगवती का एक अर्थ बुद्धि भी है– भाव है कि बुद्धि को सदा जागृत बनाए रखो। यही सच्चा भगवती–जागरण है। यदि बुद्धि ठीक है तो मन इधर–उधर नहीं भटकेगा। बुद्धि भ्रष्ट होते ही मन विकारों व बुराइयों में फँस जाता है। मन को ठीक रखने के लिये बुद्धि को जागृत एवं पवित्र रखना जरूरी है। बुद्धि के खराब होते ही सब नष्ट–भ्रष्ट हो जाता है। **'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'** विवेकभ्रष्ट होते ही पतन के सैकड़ों रास्ते खुल जाते हैं। बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है। बुद्धि के ऊपर आत्मा है। ज्ञान से आत्मबोध जागृत होता है।

आत्मबोध से आत्मा के सत्यस्वरूप का पता चलता है, तभी अपने उद्देश्य का ज्ञान होता है। ज्ञानी आत्मा में ही सांसारिक बन्धनों और मायावी प्रपंचों से छूटने का सामर्थ्य होता है। आत्मबोध से ही जीवनोद्देश्य की प्राप्ति संभव है। ज्ञानवान् व्यक्ति ही आत्मतत्त्व तक पहुँचता है। इसलिये आत्मा को जगाओ। सच्चा जागरण आत्मा का ही माना गया है। शिवरात्रि आत्मबोध का पर्व कहलाता है। आत्मा के जागरण से ही सांसारिक दुःख, चिन्ताएँ, भोगवासनाएँ आदि छूटेंगी। जिसकी आत्मा जागृत है– वह महान् व धन्य है। आत्मा के ऊपर परमात्मा है। जब आत्मा स्वच्छ, एकाग्र, निर्मल और सात्त्विक होकर अपने स्वरूप में अवस्थित होती है, तब उसे अपने स्वरूप तथा परमात्मा की अनुभूति होती है। इसी क्रम से परमात्मा के साक्षात्कार तक पहुँचा जा सकता है।

ईश्वरप्राप्ति में मन एक साधन है। मन का सीधा सम्बन्ध इच्छाओं, कामनाओं तथा वासनाओं से है। मन स्वप्न व जागृत अवस्था में तरह–तरह की इच्छाओं, स्मृतियों, कल्पनाओं आदि में उलझा रहता है। वह कभी चैन से न बैठता और न बैठने देता है। जो इसे प्राप्त है, उसको यह न देखता है न उसके बारे में सोचता है परन्तु जो प्राप्त नहीं है, उसे तेजी से पकड़ता और ढूँढ़ता है। जैसे जीभ मुख में उसी स्थान पर बार–बार टकराती है, जहाँ दाँत नहीं होते हैं। मन भी उसी के लिये मचलता, बेचैन एवं परेशान करता है, जो हमारे पास नहीं है। विचार मन का भोजन है। स्वस्थ विचार मन को शान्ति प्रदान करते हैं, परन्तु प्रायः लोग मन में पाप, अधर्म, लोभ, कामवासना आदि को पलने देते हैं। सड़क पर रखे शीशे के सामने से जो भी निकलता है, वह उसी की तस्वीर खींच लेता है। यही स्थिति मन की है। इसके सामने जो भी चीजें, दृश्य, लोग, इच्छाएँ आदि आयेंगे, उन सब की तस्वीर खींच लेगा। फिर मन चंचल, अशान्त तथा अतृप्त होने लगता है। गीता कहती है–

अशान्तस्य कुतः सुखम्।

जिसका मन अशान्त व चंचल है, उसे सुखशान्ति कहाँ है! अर्थात् वह सुख नहीं पा सकता।

लोभी का मन धन में और कामी का मन स्त्री में फँसा रहता है। जहाँ मन फँसा है, उसी का स्वप्न दिखाई देता है। स्वप्न में मन की परीक्षा होती है। यदि अपने मन के बारे में जानना है, तो देखो कि रात्रि को स्वप्न कैसे आते हैं। कामसुख भोगने के बाद कामी का मन उससे हटता तो है, मगर पुनः कामेच्छा जागृत हो जाती है। वैराग्य आता तो है, पर टिकता नहीं है। भौतिक जगत् मन के रोगों को बढ़ा रहा है। मन के रोगों का प्रभाव तन पर पड़ता है। दुनिया के पास मन के रोगों की चिकित्सा नहीं है। मन को ठीक करने के लिए योग व अध्यात्म की शरण में आना पड़ेगा।

मन बड़ा चंचल, बलवान्, हठी और चालबाज है। कदम–कदम पर धोखा दे जाता है। मन दुनिया की सुन्दर से सुन्दर वस्तु में थोड़ी देर रमता है और फिर इससे ऊब जाता है। सांसारिक सुखभोग, विलास, स्त्री–सौन्दर्य, धन–दौलत आदि आज तक मन को स्थायी रूप से बाँध नहीं सके हैं। जिस दिन हमें कोई चीज मिल जाती है, उसी दिन से वह आकर्षणहीन होने लगती है। मन फिर नई व दूसरी चीज पाने की योजना बनाने लगता है। जैसे गुब्बारा फुलाने पर बढ़ता और फैलता जाता है, ऐसे ही मन सुख की इच्छाएँ तथा शर्तें आगे बढ़ाता जाता है। मन भोग की वासना से जितना निवृत्त तथा तटस्थ होगा, उतना ही स्वस्थ तथा ज्ञानवान बनेगा। बिना वैराग्य के कामभाव जीता नहीं जा सकता है। वैराग्य ही कामभाव की औषध है। काम को धर्मपूर्वक आचरण से ही रोका जा सकता है। काम का धर्मपूर्वक सेवन करना ही उसका स्वस्थ व मंगलकारी स्वरूप है। वेद में बार–बार प्रार्थना की गई है–

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

हे प्रभु! मेरा मन अच्छे विचारों, संकल्पों और सोच वाला हो। पाप मेरे मन से हट जायें, मेरा मन शान्त, प्रसन्न व सन्तुष्ट बना रहे।

तृष्णाएँ कभी खत्म नहीं होती हैं। शरीर अवश्य जर्जरित और बूढ़ा हो जाता है, लेकिन मन कभी बूढ़ा नहीं होता है। सिर के बाल सफेद हो जाते हैं, पर मन काला का काला बना रहता है। लोग सिर मुँड़ा लेते हैं, लेकिन मन को नहीं मोड़ पाते हैं। संसार के भोगों को कोई अन्त नहीं है, परन्तु जीवन का अन्त हो जाता है।

संसार में भोगविलास की चीजों का जाल बिछा हुआ है। रोज अनेक तरह की चीजें आ रही हैं। विज्ञापन, अखबार, दूरदर्शन तथा बाजार इन्द्रियों को भोगों के लिए उत्तेजित एवं आकर्षित कर रहे हैं। अधिक से अधिक भोगने और पाने का लालच दिया जा रहा है। भोगवासनाएँ संघर्ष एवं अशान्ति उत्पन्न करती हैं। आम आदमी बिना सोचे–विचारे तथा बिना जरूरत के भोगपदार्थों के पीछे दौड़ा जा रहा है। आज हर तरह से भोगवासना को जगाया और भड़काया जा रहा है। मीडिया के माध्यम से बुजुर्गों की भी शान्त एवं निवृत्त इच्छाओं तथा वासनाओं को उकसाया जा रहा है कि तुम इन भोगों में फँसे रहो, इन्हें अभी और भोगो, अभी तुम जवान हो। सारे संसार को अर्थ और कामरूपी राक्षस निगल रहे हैं। सब जगह इन्हीं का चिन्तन और चर्चा हो रही है। सारा जगत् प्रातः से सायं तक इन्हीं को पाने की दौड़ में भागा जा रहा है। कामोत्तेजक कपड़े, भोजन, नृत्य, संगीत, दृश्य, बातें आदि कामवासना को बढ़ाने में घी का काम कर रहे हैं।

संसार भोगपदार्थों से कामवासना तथा इच्छाओं को शान्त करना चाहता है, जो असंभव और मृगतृष्णा है। प्यास पानी से बुझती है, मदिरा से कभी नहीं बुझेगी। कामवासनाएँ ज्ञान, विवेक, वैराग्य, प्रभुभक्ति, सन्तोष आदि से रूक सकेंगी। कोई मनुष्य योग्यवस्तुएँ छोड़ना नहीं चाहता है और अधिक से अधिक भोगने की होड़ लगी हुई है। यही कारण है कि उम्र ढलने के बाद भी बुढ़ापे में भोगविलास, श्रृंगार एवं इन्द्रियसुखों में मनुष्य उलझा हुआ है। इन्हीं विषयों की बातें अच्छी लगती हैं। जिन्दगी का इतना लम्बा सफर करने के बाद भी अभी तक भोगों से मन नहीं भरा है, भोगपदार्थों से विरक्ति नहीं हुई है। भोगों से अभी मन ऊबा नहीं है और अभी तक चेहरे व आँखों में भोगों की अतृप्ति, भूख तथा ललक छलक रही है।

मन जल के समान है। जैसे पानी स्वाभाविक रूप से नीचे की ओर दौड़ता है, वैसे ही मन भी विषयभोगों तथा चीजों के लिये चंचल रहता है। जितनी जरूरतें कम होंगी, मन की चंचलता उतनी ही कम होगी। विषय–भोगों और चीजों को देखने व सुनने से मन चंचल होता है। शास्त्र कहते हैं–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।

मनु. 2.19

विषयों के भोगने की इच्छा, भोगों से कभी शान्त नहीं होती है, प्रत्युत और भी बढ़ जाती है। जैसे आग में घी डालने पर आग और भड़कती व बढ़ती है, ऐसे ही विषयों को जितना भोगते जायेंगे, उतनी ही चाह और अतृप्ति बढ़ेगी, इसे कोई रोक नहीं सकता। बर्फ खाते समय तो ठण्डी व राहत देती है, किन्तु उसकी तासीर गर्म तथा हानिकारक है। ऐसे ही सांसारिक विषयभोग भोगते हुए सुखद एवं अच्छे लगते हैं, पर परिणाम में दुःखदायी होते हैं। खुजली खुजलाने में अच्छी लगती है, पर बाद में जलन और पीड़ा देती है। भोगों से अतृप्ति व अशान्ति बढ़ती है।

मन इन्द्रियों का राजा है। इन्द्रियाँ अपने विषयों की ओर दौड़ती हैं। जब तक मन को बुद्धि के द्वारा पकड़ा नहीं जायेगा, तब तक मन काबू नहीं आयेगा। बुद्धि को सुबुद्धि बनाना होगा। सुबुद्धि मन को विचार एवं विवेक देगी। मन का भोजन विचार है; यह हर समय विचारों को खाता है। अगर इसे अच्छे विचारों में नहीं लगाया, तो यह गन्दे, पापी व बुरे विचारों में फँस जाएगा। मन मनुष्य को उठाता भी है और गिराता भी है। उससे हर समय सावधान रहने की जरूरत है। पता नहीं, यह कहाँ, कैसे, कब गिरा दे। पहाड़ पर चढ़ना कितना कठिन है और गिरना व फिसलना कितना आसान है, ऐसे ही मन पता नहीं कहाँ गिर जाए। जब बुद्धि जागी हुई होती है, तब मन ठीक दिशा व कर्मों में प्रवृत्त रहता है। मन को खाली रखना खतरे से भरा हुआ है। खाली मन उल्टे–सीधे विचारों मे उलझा रहता है। मन पर हर समय चौकीदारी की जरूरत रहती है। इससे सदा सावधान रहो।

गीता मन के रोगों का इलाज बताती है। गीता में चंचल मन को समझाने और ठहराने का रास्ता अभ्यास तथा वैराग्य बताया गया है। व्यक्ति जिन अच्छे विचारों, कर्मों और स्थानों पर मन को ले जाना चाहता है, उनके लिये निरन्तर उत्साह एवं अभ्यास बनाये रखना चाहिये। मन को प्रतिदिन दुःखों, कष्टों व रोगों का स्मरण कराइये। इसे अस्पताल के रोगियों में, शवयात्रा और श्मशान भूमि पर घुमाइये, तब यह सुधरेगा। जिन बुराइयों तथा गलत कामों से मन को हटाना चाहते हैं, उनमें भय, लज्जा, घृणा आदि का भाव जागृत कीजिए। मन सत्यवाणी और सत्याचरण से शुद्ध होता है। मन की अपार शक्ति को रोक कर श्रेष्ठ मार्ग

शेष पृष्ठ 11 पर

कबिरा खड़ा बज़ार में

● डॉ. धर्मवीर सेठी

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्।।

की कितनी स्टीक एवं सरल प्रस्तुति 'मसि कागद छुओ नहीं, कलम गही नहीं हाथ' स्वीकार करने वाले सन्त, महात्मा एवं कबीर ने अपने दोहे में दी, वह देखते ही बनती है–

कबिरा खड़ा बज़ार में सबकी मांगे खैर।
न काहू सौं दोस्ती न काहूँ सौं बैर।।

और यह स्थिति मानव जीवन में तब आती है जब उसमें विनम्रता का उद्‌भव होता है और विनम्रता का बोध होता है ज्ञान प्राप्ति से।

'विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्' अर्थात् विद्या से विनय (विनम्रता) की प्राप्ति होती है एवं विनम्रता ही सुपात्र बनने की एक मात्र कुंजी है। पूर्वजों की इन अर्थ–गर्भित सूक्तियों की खिल्ली उड़ाने की प्रायः हमारी प्रवृत्ति सी हो गई है परन्तु जब अपने ऊपर ही संकट मंडराते दिखाई पड़ते हैं तो एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए प्रायः सुना जाता है "बुजुर्गों ने ठीक ही कहा है–

जिन खोजा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ।
मैं बपुरा डरपत रहा, रहा किनारे बैठ।।

तो उस रहस्य का उद्‌घाटन और उस गहराई का माप क्रमशः अज्ञान के आवरण को हटाने और ज्ञान के माप–दण्ड के प्रयोग से ही सम्भव हो सकता है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन अपावृणु सत्य धर्माय द्रष्टये।।

एतदर्थ केवल विद्यार्थी एवं युवक का ही नहीं, प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है कि वह इस विनम्रता रूपी आभूषण का तिरस्कार न करे।

विनयी बनना कितना महान् कार्य है। किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए यदि कुछ करना पड़े तो उसके क्रय के पूर्व पूर्ण–रूपेण विचार कर लेना कुछ पते की बात मालूम होती है परन्तु एक पावन एवं अद्‌भुत वस्तु विनम्रता की प्राप्ति और वह भी बिना किसी मूल्य के – इससे अधिक किसी और सौभाग्य की सम्भावना कैसे की जा सकती है? किसी को कटुवचन कह कर शायद लेने के देने पड़ जाएँ परन्तु किसी से मीठा बोलने पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं है।

मीठी वाणी बोलिये सबका आपा खोय,
औरन को शीतल करे आप भी शीतल होय।
तुलसी मीठे वचन से।
सुख उपजत चहुँ ओर।।
वशीकरण इक मन्त्र है।
तज दे वचन कठोर।।

सत्य ही कहा है "Cultivate humility - the greatest of all virtues. The mightier a man, the humbler he is." बीज–वपन से जैसे एक महान् वृक्ष को प्राण मिल जाते हैं वैसे ही मनुष्य का नम्र स्वभाव उसे कुन्दन बना देता है। किसी के प्रति सहानुभूति के दो शब्द कह देना अथवा विनम्र हो उसके साथ व्यवहार करना मानो उस के हृदय पर विजय पा लेना है।

कहा जाता है मनुष्य को बुद्धि का वरदान प्राप्त है, उसी के बलबूते वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है –

तृण झष पशु से नर तन देता,
जीवन विकास का तार उसे।
वह शासन क्यों न करे भू पर,
चुनना है सब का सार उसे।।

परन्तु बुद्धिमान को अहंकारी बनने की आवश्यकता नहीं, स्वाभिमानी चाहे बन ले। अहंकार से क्रोध को प्रोत्साहन मिलता है और क्रोध के प्रबल होने पर तर्क–शक्ति 'टा–टा' कर जाती है।

क्रोधात् भवति सम्मोहः, सम्मोहात् मति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशः, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

हेनरी के ये शब्द कितने सुन्दर हैं – "When passion is on the throne, reason is out of doors." अस्तु, स्वाभिमान का गुण ही उसे सन्मार्ग पर ले जाने में योगदान देता है, विनम्रता जिसका पहला सोपान है। विचार की शुद्धि इसी का साध्य है और जब मानव के विचार महान् होंगे तो उसके कर्म भी उसी अनुपात में उच्चतर होते चले जाएगे।

'अद्भिः गात्राणि शुद्धयन्ति।
मनः सत्येन शुद्धयति' एवं 'विचार शुद्धौ सत्वशुद्धिः।।'

किसी ने ठीक ही कहा है–

"Highest virtue under the sun is humility, which alone leads to clarity of thoughts."

लज्जा जैसे नारी का आभूषण है, विनय उसी प्रकार नर का अलंकार। नर–नारी का सम्बन्ध जैसे सनातन है, विनय–लज्जा का मिलन उतना ही पुरातन। विनम्र भाव से जो कार्य सरल बन जाते हैं उद्दण्डता से वही विकराल रूप धारण कर लेते हैं यह निर्विवाद है। एक बार विनम्र बन कर देखो तो सही, विजय तुम्हारी है। परन्तु उसका अभिप्राय यह नहीं है कि अन्याय के प्रति भी नत–मस्तक होते चले जाओ। आम से लदी डाली स्वयमेव नीचे की ओर झुक आती है। बटोही को अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता।

नमन्ति फलिनो वृक्षाः,
नमन्ति गुणिनो जनाः।
शुष्क वृक्षाः च मूर्खाः च,
न नमन्ति कदाचन।।

महान् व्यक्ति का तो यह विशेष गुण ही है। इसी में इसकी महत्ता टपकती है। खजूर का पेड़ न तो छाया प्रदान करता है और न उसका फल ही आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।

यहाँ मैं आर्य समाज के सातवें नियम 'सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बरतना चाहिए' को उद्‌धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। 'प्रीतिपूर्वक' का विशेष महत्व है। प्रीति (पारस्परिक प्रेम, लगाव) होगा तो नम्रता स्वभावतः आ जाएगी।

अस्तु, बाज़ार में खड़ा कबीर उसी नम्रता की भिक्षा मांगता है 'कबिरा खड़ा बज़ार में, सब की मांगे खैर'। भिखारी की झोली भर सको तो भर दो, तुम्हें हज़ारों आशीष देगा।

'वरेण्यम्', ए–1055,
सुशान्त लोक–1
गुरुग्राम–122009

आर्य समाज की मान्यताएंः सार्वजनिक स्वीकृति प्राप्त हैं।

● डॉ. भवानीलाल भारतीय

कुछ वर्ष पूर्व धर्म प्रचारार्थ जाने का अवसर मिला। श्रोता लोगों ने कहा, हम कई शताब्दियों से अपनी सभ्यता, संस्कृति, मान्यताओं आदि से दूर हो गये हैं। विदेशी रंग भी चढ़ गया है। कुछ सार रूप में हमें आर्य मान्यताओं से परिचित करायें। मैने कहा– इस पद्य को अपना मार्गदर्शक बना लें–

आर्य हमारा नाम है, वेद हमारा धर्म।
ओम् हमारा देव है सत्य हमारा कम।।

हमारा नाम हम सब याद रखें – वह है आर्य, श्रेष्ठ पुरुष। कोई पूछे तुम्हारा धर्म क्या है? उत्तर में कहो वेद प्रतिपादित ही हमारा धर्म है। वेद अखिल धर्म का मूल है और वेद विरुद्ध मान्यताओं को हम अस्वीकार करते हैं। एक परमात्मा ओम् पद वाच्य है, वही हमारा आराध्य है और हमारे सभी कर्म सत्य – आश्रित होते हैं।

विचित्र बात यह थी कि हम अपने वास्तविक आर्य नाम को भूल गये थे और उसके स्थान पर हिन्दू, हिन्दी, इण्डियन आदि नाम प्रयुक्त करने लगे थे। मनु ने हमें पुनः स्मरण कराया–

इसी देश के रहने वाले पुण्यकर्मा आर्य, ब्राह्मणों से समस्त संसार के लोग चरित्र की शिक्षा ग्रहण करते थे। समस्त प्राचीन साहित्य में हमारे जाती 'आर्य' नाम से उल्लेख मिलता है। वेदों में कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का आदेश है – हम समस्त संसार को आर्य श्रेष्ठ बनायें। महाभारत, रामायण आदि ऐतिहासिक महाकाव्यों में पुत्र पिता को बड़े भ्राता को आर्य कहकर सम्बोधित करते हैं जबकि पत्नी पति के लिए आर्य पुत्र का प्रयोग करती है। यवन संसर्ग में हम अपने प्राचीन नाम को भूल बैठे थे। आर्य कोई धर्म मत नहीं अपितु सांस्कृतिक तत्त्वों से समन्वित है। गीता में कृष्ण ने अनार्य जुष्ट (कायर अनार्योचित) न बनने के लिए है। भरत और लक्ष्मण अग्रज राम को आर्य कहकर सम्बोधन करते हैं।

ऋषि दयानन्द ने समस्त मानव जाति को आर्य और दस्यु–सज्जन और दुष्ट – इन दो वर्गों में बांटा है। आर्य का प्रयोग संस्कृत साहित्य में नाटकों के लेखन तक होता रहा। कालिदास, भास और उत्तरचरितकार ने भी अपने नायकों के लिए आर्य का प्रयोग किया है।

जहां तक अपने धर्म का सम्बंध है यह कहना ही पर्याप्त है कि मेरा धर्म वही जो वेद द्वारा प्रतिपादित, प्रचारित तथा स्वीकृत है समस्त शास्त्रकार इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। कि जो कुछ शास्त्र (वेद) कहता है, परमात्मा द्वारा कथित होने के कारण धर्म है। वेदान्त ने कहा– शास्त्र योनित्वात्। महर्षि कणाद ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा– जो निः श्रेय (मोक्ष) तथा अभ्युदय (सांसारिक उन्नति) प्राप्त कराता है, वहीं धर्म है। सचमुच यदि हम स्वयं को वैदिक धर्मी कहते हैं तो हमें उस पर चलने का आदर्श वेदों से सीखना होगा। वेद ही 16 संस्कार, वर्णाश्रम धर्म तथा दैनिक –पाक्षिक, पार्विक संस्कार सिखाते हैं–

ओम् हमारा देव है, कहकर यह सूक्ति जहां पूज्य, उपास्य तथा अपना सर्वोपरि लक्ष्य ईश्वर घोषित करती हैं, वहां ओम् को उसका सर्वश्रेष्ठ नाम बताती है। वेद ने स्वयं कहा ओ३म् क्रतो स्मर, तू ओम् का स्मरण कर। योग दर्शन ने ओम् को परमात्मा का वाचक घोषित किया

तस्य वाचकः प्रणवः।

उसका ध्यान संयमी, लगनशील तथा केन्द्रित ध्यान वाले होकर करो। गीता में कृष्ण ने ओम् को एकाक्षर ब्रह्म बताया। सारे योगी यदि, तपस्वी, आचार्य ओम् की महिमा से भरपूर हैं।

शास्त्र कहता है कि सत्य सर्वोपरि है। वेदों में सत्य की महिमा सर्वत्र गाई गई है। उपनिषद्

शेष पृष्ठ 11 पर

वर्तमान वैश्विक समस्याएं एवं वैदिक समाधान

● सुशीला पंत

वर्तमान समय में भौतिकवादी सभ्यता ने विश्व में अनेकानेक समस्याओं को जन्म दिया है। वैदिक साहित्य अथाह ज्ञान का भण्डार है। वास्तव में वेदों में सभी धर्मो के श्रेष्ठ तत्व समाहित हैं।

समाज में रहकर उचित कार्यों को करना, बुरे कार्यों का त्याग करना मानव का वास्तविक धर्म कहलाता है। धर्म को जानने वालों के लिए वेदों को परम प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया है।

"धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।[1]

वर्तमान समय में समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए आध्यात्मिक समाधान की आवश्यकता आज सर्वत्र अनुभव की जा रही है। यदि संसार की रचना, पालन तथा संहार के पीछे हम किसी ईश्वरीय शक्ति को स्वीकार करें तो मानव अपने इन कृत्यों पर अकुश लगा सकता है। इसी विषय में यजुर्वेद में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण विश्व ईश्वर से आच्छादित है तथा उसके द्वारा रक्षणीय है।[2] इसी प्रकार के भाव वेदों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। समाज में व्याप्त कुछ मूल समस्याओं के वेदोक्त समाधानों पर विचार किया जा सकता है।

वर्तमान पर्यावरण समस्या का वेदोक्त समाधान– वर्तमान समय में वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिक एवं तकनीकी के विकास, जनसंख्या वृद्धि आदि अनेक कारणों से पर्यावरण प्रदूषण निरन्तर बढ़ता जा रहा है। वर्तमान समय में जल, वायु, आकाश आदि सभी प्रदूषित हैं, जो मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं। वर्तमान समय में इनकी शुद्धता मानव के लिए प्रमुख चुनौती बन गयी है। इन्टरगर्वमेन्टल पैनल आन क्लाइमेट चेंज (आईपीसी) की हालिया रिपोर्ट खुलासा करती है कि पिछले कुछ वर्षों में विश्व में ग्लोबल वार्मिंग के खतरे ज्यादा बढ़े हैं। इन्हीं खतरों में एक है, वैश्विक स्तर पर समुद्र का जल स्तर बढ़ना जिससे समुद्र के किनारे बसने वाले कई देशों/शहरों के डूबने का खतरा बढ़ जाएगा।[3]

जहाँ ग्लोबल वार्मिंग के खतरे बढ़ते जा रहे हैं वहीं पवित्र यमुना नदी के प्रदूषण की भी कई घटनाए सामने आ रही हैं। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने 2012 में माननीय उच्चतम न्यायालय को बताया है कि यमुना नदी का प्रदूषण पहले की तुलना में 400 कि.मी. (पानीपत से इटावा) तक बढ़ गया है।[4]

वेदों में हमें पर्यावरण संरक्षण के विषय में अनेक मंत्र दृष्टिगोचर होते हैं। यजुर्वेद में पवित्र जल एवं उसकी सहायता से उत्पन्न होने वाली औषधियों को नष्ट न करने की प्रार्थना की गयी है।

"माऽपो मोषधीर्हिंसी...।।"[5]

अथर्ववेद में कहा गया है कि ये सम्पूर्ण हरे–भरे पर्वत, जंगल इत्यादि नहीं काटने चाहिए। क्योंकि ये तो सबका कल्याण करने वाले हैं।[6]

गिरयस्ते पर्वता हिमन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।

याज्ञवल्क्य भी इसी प्रकार की विचारधारा की पुष्टि करते हैं। जो वृक्ष हमारे जीवन का साधन हैं, जो लताओं तथा कोपलों से युक्त हैं, ऐसे वृक्षों को काटना कदापि उचित नहीं है। क्योंकि ये तो हमारे लिए लाभकारी हैं। अतः यदि कोई इनको काटता है तो दण्डनीय माना गया है।[7]

नशावृत्ति की समस्या का वैदिक समाधान–

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् पश्चिमी देशों में नशीले पदार्थों का बहुत अधिक प्रचलन हो गया। भारत में भी नशीले पदार्थों का बहुत अधिक प्रचलन था, परन्तु इसमें भिन्नता थी। केवल अशिक्षित, गरीब वर्ग में इसका अधिक प्रचलन था। परन्तु नशावृत्ति का प्रचलन वर्तमान में शिक्षित वर्ग में भी देखा जा सकता है। मद्यपान करना वर्तमान समाज में फैशन सा बन गया है। नशावृत्ति नवयुवकों को दिन–प्रतिदिन पतन की ओर अग्रसर कर रही है। वेद मनुष्य को मद्यपान से दूर रहने का उपदेश देते हैं।[8]

महर्षि मनु ने मद्यपान को एक बुराई बताया है तथा इसके निषेध का उपदेश दिया है।

सुरों वै मलमन्नानां पाप्पा च मलमुच्य।

तस्माद्द्/ब्राह्मणं/राजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेतु।।

वैश्विक आतंकवाद की समस्या का वैदिक समाधान– आतंकवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। निकट भविष्य में यह भयावह समस्या बनने जा रही है। हाल ही में 28 जुलाई 2015 बुधवार को पंजाब के दीनानगर थाने में आतंकवादियों ने आतंकी हमले को अंजाम दिया है।[10] आतंकियों ने दीनानगर थाने पर हमला किया। उधर थोड़ी दूर अमृतसर–पठानकोट रेलवे ट्रैक पर 5 आईईडी मिलने से सनसनी फैल गई। आतंकियों ने सर्किट के जरिए बम को पटरियों से बाध रखा था। रेलवे ट्रैक उड़ाकर बड़े धमाके से ज्यादा से ज्यादा नुकसान की साजिश थी।[11] वर्तमान समय में ऐसे ही अनेक आतंकी हमलों की अनेकानेक खबरों ने समूचे विश्व को चिन्ता में डाल दिया है। कोई भी देश इस समस्या से अछूता नहीं है, परन्तु वैदिक काल में इस समस्या के लिए कठोर नियमों का विधान किया गया था। जैसे कि ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि हे इन्द्र तुम राक्षसों को समूल नष्ट करो।[12] ऋग्वेद में अन्यत्र भी आतंकवादियों के शिरच्छेदन का आदेश दिया है।[13] जिससे लोग पराध करने का अपने मन में विचार भी न करें। स्मृतियों में भी आतंक तथा आतताइयों हेतु कहा गया है कि कारागार को ऐसे स्थानों पर बनाना चाहिये, जहाँ सामान्य लोग उन्हें कठोर दण्ड भुगतते हुए देखें तथा फिर कोई व्यक्ति पाप कार्य में प्रवृत न हो।[14]

भ्रूण हत्या की समस्या का वैदिक समाधान– वर्तमान समय में भ्रूण हत्या रूपी अपराध समाज में एक गम्भीर समस्या है। महिलाओं के प्रति हिंसा का ज्वलन्त उदाहरण कन्या भ्रूण हत्या भी है जिसमें कन्या को जन्म लेने से पूर्व ही मार दिया जाता है। भारत देश में ऐसे बहुत से अल्ट्रासाउण्ड क्लीनिक एवं डायग्नोस्टिक सेन्टर देखने को मिलेंगे जिन पर यहाँ प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण नहीं होता है का बोर्ड लटका दिया जाता है, लेकिन हकीकत यह है कि इनमें बैठने वाले डॉक्टर ही कुछ रुपयों की खातिर भ्रूण की लिंग जाँच करते हैं। पंजाब और हरियाणा में तो कन्या भ्रूण हत्या के लिए पैकेज ऑफर किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में आप हरियाणा के डाक्टर पटौंदी को चाहकर भी नहीं भूल पाये होंगे क्योंकि इस फर्जी डाक्टर ने अपने तथाकथित क्लीनिक में प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण एवं गर्भपात की सभी अत्याधुनिक मशीनें एवं उपकरण लगाये थे। इस डॉक्टर के क्लीनिक के पास खाली पड़े प्लाट में बने सेप्टिक टैंक से 300 से ज्यादा मादा भ्रूण बरामद हुए थे। इसमें काफी भ्रूण तो विकसित थे और काफी अधजले भ्रूण भी थे। यह सिर्फ एक पटौंदी है जो कन्या भ्रूण हत्या के पाप में संलग्न है जो चंद रुपयों की खातिर अपना ईमान बेच देता है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़ गर्भपात होते हैं। जिनमें से अधिकतर गैर कानूनी होते हैं।[15] ऋग्वेद में भ्रूण हत्या के विषय में इस प्रकार के भाव मिलते हैं।

चन्तो इतश्चन्तामुतः सर्वाः भ्रूणान्यारूषी।
अराय्य ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णश्रृङ्गोहृषन्निहि।।[16]

अर्थात् अलक्ष्मी सभी भ्रूणों को नष्ट करने वाली है इसलिए इसका इस लोक तथा परलोक में भी नाश हो, ऐसी कामना है। हे तेजस्वी ब्रह्मणस्पति! तुम इस अलक्ष्मी को संसार से दूर ले जाओ।

स्मृतियों में भी भ्रूण हत्या का निषेध किया गया है। आचार्य मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि गर्भपात कराने वाले को देखा हुये का अन्न नहीं खाना चाहिए, उसे खाने से पाप लगता है।[17] पुराणों में भी भ्रूण हत्या को महापाप की संज्ञा दी है।[18]

महिला उत्पीड़न का वेदोक्त समाधान– हाल ही में दिल्ली में 'दामिनी' 'निर्भया' के साथ हुए सामूहिक बलात्कार ने मानव के समक्ष कई प्रश्न खड़े कर दिये हैं। आखिर इन सबका जिम्मेदार कौन है? क्या मात्र शासन, पुलिस या जनता को जिम्मेदार माना जाये? जहाँ सारा शरीर ही विषाक्त और बुद्धि में भी विकृति आ गयी हो ऐसे में उपचार रोग के मूल में जाकर ही सम्भव है। इन सारे प्रश्नों का हल मात्र कुछ दिनों में नहीं खोजा जा सकता।[19] इन समस्याओं का पूर्ण समाधान मूल में सुधार से ही सम्भव है। आज अपनी संस्कृत तथा अपने अतीत को जानने की आवश्यकता है। आदर्श मनुष्य में ही सद्विचार उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए वेद का मानव जाति के लिए सबसे पहला उद्घोष है कि जीवन में इतने ऊँचे उठो जितना आकाश में सूर्य है। ऋषियों–मुनियों के पद चिन्हों पर चलकर मननशील व अच्छे इन्सान बनो।[20]

नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार 2011 में पूरे भारत में 24200 मामले सामने आय जिसमें महिलाओं को बलात्कार का दंश झेलना पड़ा जबकि 2012 में प्रत्येक 30 मिनट पर 17520 बलात्कार हुए जबकि अकेले दिल्ली में वर्ष 2012 में 58 प्रतिशत मामले बलात्कार के दर्ज हुए।

हमारे देश में प्रतिदिन 40 प्रतिशत बलात्कार के केस दायर होते हैं। 25 से ज्यादा दहेज हत्या तथा 35 स्त्रियां प्रतिदिन घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं। यातना, छेड़छाड़, यौन उत्पीड़न के 225 मामले प्रतिदिन दर्ज होते हैं।[21] चारित्रिक दुर्बलता के कारण ही वर्तमान समय में महिला उत्पीड़न की कई घटनायें सामने आ रही हैं। वेदों में जहाँ शुद्ध आचरण की बात कही गयी है, वहीं आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया है।[22] वैदिक काल में नारी को आदरणीय स्थान दिया गया था। ऋग्वेद में नारी को पुरुष के समान समानता का अधिकार दिया गया है।[23] नारी के सम्मान की यह प्रक्रिया न केवल वैदिक काल में ही थी अपितु स्मृति काल में भी यह प्रक्रिया अविच्छिन्न रही। अतएव मनु का कथन है कि जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवताओं का निवास होता है और जहाँ इनका निरादर होता है, वहाँ सारे कार्य निष्फल हो जाते हैं।[24]

पारिवारिक विघटन की समस्या का वेदोक्त **समाधान–** वर्तमान समय में पारिवारिक विघटन की समस्या एक गम्भीर समस्या बनती जा रही है। वर्तमान समय में भौतिकवादी विचारधारा ने मनुष्य को स्वार्थी व आत्मकेन्द्रित बना दिया है। माता–पिता भी संतानों के प्रति अपने दायित्व को भूल रहे हैं। परिवारों के विघटन का जो भयावह रूप आज पश्चिमी समाज में ही दिखाई देता है, यही रूप भारतीय समाज में प्रविष्ट न हो इस विषय में हमें वेदोक्त समाधान को ध्यान में रखना चाहिए – वैदिक काल में पारिवारिक जीवन सयुंक्त परिवार प्रथा पर आधारित था। अथर्ववेद में कहा गया है कि हे गृहस्थो! जैसे तुम्हारा पुत्र माता के साथ प्रतियुक्त मनवाला अनुकूल आचरणयुक्त और पिता के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का प्रेमवाला होवे, वैसे तुम भी पुत्रों के साथ सदा वर्ता करो। जैसे स्त्री पति की प्रसन्नता के

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

"मानव का पशु आकार में जन्म हुआ" यह कहना निराधार और कपोल कल्पित है

आर्यजगत के [illegible] जुलाई 2015 अंक मे श्री हरिश्चन्द्र वर्मा का एक लेख छपा है। उसमें उन्होंने लिखा है–

"सर्वप्रथम मानव उत्पादक गर्भ की झिल्लियों से विशेष प्रकार के प्राणी पशु रूप में पैदा हुए, और पैदा होते ही सरकने लगे।... इसलिए मानव को सर्वप्रथम पशु आकार में जन्म लेना पड़ा। उसके पश्चात् परिवर्तन द्वारा अन्त में युवा और युवती के रूप में प्रकट हो गए।"

श्री हरिश्चन्द वर्मा की ये बातें निराधार, भ्रामक एवं ऋषि दयानन्द के एतद् विषयक मन्तव्य से प्रतिकूल हैं।

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में अपना मन्तव्य लिखा है कि– (1) ईश्वर ने सृष्टि की आदि में अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे। (2) आदि सृष्टि में मनुष्य की युवावस्था में सृष्टि हुई थी। (3) मनुष्यों की आदि सृष्टि त्रिविष्टप अर्थात् जिसको तिब्बत कहते हैं उस स्थल में हुई थी।

उपर्युक्त तीनों ही मन्तव्यों में ऋषि दयानन्द ने आदि सृष्टि में "मनुष्य" की उत्पत्ति की बात लिखी है।

अतः मानव आदि सृष्टि में प्राणी या पशु रूप में पैदा हुए या मानव को पशु आकार में जन्म लेना पड़ा और पैदा होते ही वह सरकने लगा और बाद में मानव परिवर्तन द्वारा अन्त में युवा और युवती के रूप में प्रकट हो गए– ये सारी बातें जो श्री हरिश्चन्द्र वर्मा ने अपने लेख में लिखी हैं नितान्त निराधार एवं कपोल कल्पित हैं।

सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनि सृष्टि के अन्तर्गत ईश्वर द्वारा उत्पन्न मनुष्य आज वर्तमान में जैसे दिखलाई देते हैं वैसे ही आकार–प्रकार या आकृति वाले थे। आदि सृष्टि में भी मनुष्य–मनुष्य के ही रूप में उत्पन्न किया गया, किसी पशु आदि के रूप में नहीं। यह बात भिन्न है कि आरम्भ में कुछ काल पर्यन्त उनका व्यवहार केवल स्वाभाविक ज्ञान की सहायता से ही चलता रहा होगा। शरीर या भौतिक दृष्टि से वे भले ही युवावस्था में उत्पन्न किए गए हो, मगर व्यवहार, चेष्टा और ज्ञान आदि की दृष्टि से वे बाल्यावस्था में थे ऐसा कहा जा सकता है। तत्पश्चात् नैमित्तिक वेद ज्ञान की प्राप्ति के बाद उनका व्यवहार एवं ज्ञान का स्तर शनैः शनैः परिवर्तित होता गया होगा। ऋषि दयानन्द ने पूना–प्रवचन (उपदेश मंजरी) के पष्ठ उपदेश में इस विषय का वर्णन किया है। जिज्ञासु पाठक वहां भी देख सकते हैं।

भावेश मेरजा
8–17 टाउनशिप, पो नर्मदानगर,
जि. भरूच, गुजरात–312095

****

साफ सदा गर मन रहे आवें शुद्ध विचार

(दोहे)

पोथी पढ़ पढ़ ना मिले, ईश मिलन की राह।
उसी एक की टेक ले, अगर मुक्ति की चाह।।

भवसागर में जो गिरे, वह तो जाता डूब।
जो भावों में डूबता, पार उतरता खूब।।

आग न दीखे काठ में , ना ही तिल में तेल।
यूं ही अंशी अंश का, है आपस में मेल।।

दरपन में जो दीखता, उसे न पकड़ा जाय।
माया भ्रम पैदा करे, कोई समझ ना पाय।।

करुणा ऐसी कीजिये, तुम दीखो सब ओर।
जिसके रस में डूबकर, दीखूं भावविभोर।।

इन नयनों से दीखता, मुझे उसी का रूप।
व्यापक है हर ठौर पर, उसका रूप अनूप।।

भीतरी बाहर है वही, देख सके तो देख।
जो भी तुझको दीखता, सबमें उसको देख।।

मन में जो कूड़ा भरा, झाडू उस पर मार।
साफ सदा गर मन रहे, आवें शुद्ध विचार।।

दोष और का देखकर, जो हंसता वह क्रूर।
कभी न अपने दोष को, कर पाता वह दूर।।

नरेन्द्र आहुजा 'विवेक'
पंचकूला

पाकिस्तान निर्माता मुस्लिम नेताओं का खतरनाक रहस्य पढ़ें

देशभक्त नेताओ सावधान! पापी की घिनौनी चाल को जानो!

हिन्दुस्तान के बटवारे पर प्रसिद्ध कांग्रेस, मुस्लिम नेता मुहम्मद एफ. के. दुर्रानी ने कहा था–"मुसलमान लोग, 'बटवारे में 'हमे छोटा सा पाकिस्तान मिला है' इस बात हेतु रोना चिल्लाना छोड़ें, हम इस पाक को भारत के विरुद्ध युद्ध का बेस–कैम्प बना कर जिहाद द्वारा पूरे हिन्दुस्तान को शीघ्र इस्लामिक देश बना लेंगे"

संदर्भ देखें–मुस्लिम पॉलिटिक्स इन इण्डिया' पृष्ठ 149 पर।

इसलिए आवश्यक है कि हम वोट लोभी देशद्रोही हिन्द के धूर्त नेताओं के बहकावे से बचें।

आचार्य आर्य नरेश
उद्गीथ (हिमाचल प्रदेश)

****

आर्य विद्वानों से स्पष्टीकरण हेतु एक निवेदन

यजु. (39/6) में महर्षि दयानन्द ने लिखा है–'मृत्यु के बाद आत्मा पहले दिन सूर्य दूसरे दिन अग्नि, तीसरे दिन वायु, चौथे दिन आदित्य (महीना), पांचवे दिन चन्द्रमा, छठे दिन ऋतु, सातवें दिन मरुत, आठवें दिन बृहस्पति, नवें दिन मित्र, दसवें दिन वरुण, ग्यारहवें दिन इन्द्र और बारहवें दिन विश्वेदेवों को प्राप्त होता है।

उन्होंने इसकी विस्तृत व्याख्या नही की है। पौराणिक विद्वान इसी मंत्र के आलोक में 12 दिनों का श्राद्ध कर्म कराते हैं, जबकि महर्षि दयानन्द ने अन्त्येष्टि प्रकरण में केवल तीन दिनों तक हवन–यज्ञ करने का निर्देश दिया है। इस संदर्भ में उन्होंने किसी वेद मंत्र या प्राचीन धर्मसूत्रों का प्रमाण नहीं दिया है, जैसा कि अन्य संस्कारों में दिया है। यदि कोई इसी मंत्र के आधार पर आर्य समाज से पूछे कि बारह दिनों का श्राद्ध कर्म क्यों नहीं करना चाहिए, तो आर्य समाज का क्या उत्तर होगा?

इस संदर्भ में आर्य विद्वानों से आग्रह है कि अपना स्पष्टीकरण आर्य जगत् में अवश्य भेजें, ताकि कर्म कांड कराने वाले हम लोगों जैसे व्यक्ति का मार्ग दर्शन हो और पौराणिक विद्वानों को उत्तर दिया सके।

सूर्य देव चौधरी
रांची (मो. 09470587333

****

☞ पृष्ठ 03का शेष

वृक्षों में आत्मा का ...

जीवित रहती है।

कुछ लोग कहते हैं कि जो सबसे नीच कर्म पापी होता है, उसका जन्म वृक्षों में होता है। जब वृक्ष पापी हैं तो उनसे उत्पन्न फलों को क्यों खाया जाता है? (यह कथन प्रक्षिप्त है)

(मौलिक प्राण के निमित्त) हृदय क्रिया से 'प्राणायान' द्वारा भोजन से रस और रस से उपकरणों द्वारा रक्त बनना और उसका शोधन होकर सारे शरीर में पहुँचते रहना, यह सब प्राणों द्वारा क्रिया जब तक आयु है तब तक अविरत शरीर में चलता रहता है। इसके अलावा 'समान' प्राण से नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुँचता रहता है। 'उदान' प्राण से कण्ठस्थ द्वारा अन्नपान खींचा जाता है बल पराक्रम होता है। 'व्यान' प्राण से सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीवात्मा करता रहता है।"

अतः वृक्ष वनस्पतियाँ न जड़ हैं, न जीव, यह एक अलग रचना है, इनसे औषधियाँ और अन्न द्वारा मनुष्यों को भोजन प्राप्त होता रहता है।

वेद में ईश्वर की **"तमीशानं जगतस्तस्थुषश्च, जगतः जंगमस्य (चेतन) स्तस्थुषश्च, स्थावरस्य (जड़)** दो प्रकार की सृष्टि का स्वामी कहा है। किन्तु इनके दो विभाग को तीन क्रमों में बांट दिया गया है। 1– इसमें मनुष्य से लेकर, पशु, पंक्षी, कीट, पतंग सभी आते हैं जिनमें आत्मा के लक्षण पाये जाते हैं। 2– वनस्पतियों में– वृक्ष, कन्द, मूल, फूल–फल, शाक–सब्जी सभी आ जाते हैं, ये आत्मा रहित है। इनमें केवल प्राण द्वारा रासायनिक क्रिया होती है। 3– मिट्टी, पत्थर, कोयला, लोहा, तांबा, सोना, चाँदी हैं, इनमें जीव नहीं है।

मु.पो. मुरारई, जिला–वीरभूम
(प. बंगाल) 731219
मो. 8158078011

☞ पृष्ठ 07 का शेष

जीवन का उद्देश्य...

में लगाइये। बहता पानी खेत में लग जाता है, तो फसल अच्छी होती है। बहती बिजली प्रयुक्त होने पर प्रकाश देती है। ऐसे ही मन की धारा को रोककर सत्कार्यों में प्रयुक्त करने से सफलता मिलती है और जीवन ऊँचा उठता है।

मन की धारा को भौतिक विषयों, भोगपदार्थों से हटाकर, समझाकर, ज्ञान वैराग्य, विवेक आदि की घुट्टी पिलाकर, अन्दर की ओर मोड़ना ही धार्मिकता व आध्यात्मिकता की सीढ़ी है। मन की धारा को मोड़ना है। संसार से हटाकर प्रभु की ओर जोड़ना है। जब फल अन्दर से पक जाता है, तब डाल से स्वतः छूट जाता है। ऐसे ही मनुष्य के हृदय में जब ज्ञान और वैराग्य आ जाते हैं, तब वह इच्छाओं तथा भोगवासनाओं से छूटने लगता है। जब नारियल के अन्दर पानी सूखने लगता है तो बाहर का छिलका छूटने लगता है। जब तक मन के अन्दर से इच्छाएँ व भोगवासनाएँ छूटेंगी नहीं, जब तक दुनियावी बन्धन भी कटेंगे नहीं। वैराग्य की स्थिति में ही मन क्षणभंगुर और नश्वर सांसारिक भोग–पदार्थों से विरक्त होगा।

तत्त्वदर्शन है कि संसार के पदार्थों का भोग उतना ही करो, जितनी आवश्यकता है। उतनी इच्छाएँ करो, जितनी जरूरत है। महाभारत में व्यास जी कहते हैं–

भोगाभ्यासाद् विवर्धन्ते रागाः।

भोगों से वासनाएँ बढ़ती हैं और रोग आते हैं। मनुष्य इच्छाओं के घोड़े पर बैठा दौड़ा जा रहा है। इच्छाएँ तो मृगतृष्णा की तरह हैं। जंगल में मृग पानी की चाह में दौड़ा जा रहा है। रेत पर सूर्य की चमकीली किरणें पड़ रही हैं। मृग को भ्रम हो रहा है कि दूर पानी बह रहा है। प्यासा मृग जितना दौड़ता जाता है, उतना ही पानी उससे दूर होता जाता है। हिरण भागते–भागते थक जाता है। प्यास से व्याकुल होकर गिर पड़ता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। यही दशा संसार में मनुष्य की हो रही है। मानव को सांसारिक विषयभोगों, वासनाओं, इच्छाओं आदि की प्यास ने अशान्त व व्याकुल कर रखा है। जितना चीजों को भोगता जाता है, उतनी प्यास और बढ़ती जाती है। वासनाएँ अनन्त हैं, परन्तु जीवन छोटा है। आज नये–नये भोगपदार्थ तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। भोगने का साधन शरीर दिन–प्रतिदिन क्षीण, रोगी, कमजोर और मृत्यु की ओर बढ़ रहा है।

इन्सान साधनों का जुटाता–जुटाता जीवन व्यतीत कर जाता है। जीने की तैयारी करते–करते जीवन समाप्त हो जाता है। इसी भटकन और भोगों की प्यास के कारण न जाने मानव कितने जन्मों से आवागमन के चक्कर काट रहा है। मानव स्वयं इच्छाओं तथा कल्पनाओं का जाल बुनता है। फिर उसमें उलझकर दुःखी, परेशान व बेचैन होता है। चाह के साथ चिन्ताएँ जुड़ी हैं। जितनी भौतिक उन्नति हो रही है और सुख–भोग तथा आराम के साधन बढ़ते जा रहे हैं, उतनी तेजी से हिंसा, अशान्ति, संघर्ष, स्वार्थ, रोग, चिन्ता, अतृप्ति, तनाव आदि बढ़ रहे हैं। आज का भौतिकवाद तथा विज्ञानजगत् मनुष्य के जीवन एवं जगत् की समस्याएँ व चिन्ताएँ सुलझाने की बजाय बढ़ाता और उलझाता जा रहा है। उपनिषद् में कहा गया है–

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।

संसार के पदार्थों का उपभोग ज्ञान, नियम तथा त्यागपूर्वक करो। संसार के भोगपदार्थों में इतने लिप्त न हो जाओ कि अपने जीवन व उद्देश्य की सुधबुध ही न रहे। जीवन का लक्ष्य केवल जगत् के साधनों की प्राप्ति नहीं है, प्रत्युत भगवत्प्राप्ति है। नाव पानी में चलती है, यदि पानी नाव में भर जाए तो नाव डूब जाएगी। ऐसे ही संसार में रहें, दुनिया का उपयोग और उपभोग करें परन्तु इसमें लिप्त तथा आसक्त न हो जायें। संसार के विषययोग तथा चीजें बड़ी लुभावनी, सुहावनी, मोहक और आकर्षक हैं। इनका आकर्षण बिना ज्ञान और वैराग्य के छूटता नहीं है।

उम्र बढ़ने के साथ–साथ सांसारिक विषयवासनाओं और इच्छा आदि का आकर्षण व मोह धीरे–धीरे कम होते जाना चाहिये। इसी में जीवन की भलाई एवं सुन्दरता है। जो विषयभोगों के दास बन रहते हैं, वे अन्त समय में पछताते हैं। हम इन्द्रियों के दास न बनकर स्वामी बनें। इन्द्रियाँ हमारे कहने को मानें, इसी में कल्याण है। आज लोग इन्द्रियों के दास बनकर जी रहे हैं। इसीलिये रोग, शोक, चिन्ता, भय, तनाव आदि से दुःखी एवं परेशान हैं। जिसने मन को जीत लिया और अपने को सँभाल लिया, वही ज्ञानी है और उसी का जीवन सार्थक और उसी का बेड़ा पार है।

जीवनोद्देश्य की प्राप्ति में 'काम' की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह भौतिक जीवन के संचालन का आधार है। भारतीय ग्रन्थों तथा चिन्तकों ने इसके दोनों पक्षों, योग और भोग का जीवन में समन्वय किया है। इन दोनों धाराओं का मर्यादित, संयमित व धर्मानुसार उपयोग व उपभोग करते हुए जीवन के लक्ष्य की ओर अग्रसर होना बताया है। संसार को बहुत भोग और देख लिया। बहुत धन कमा लिया। अब धर्म का संग्रह करना है। जो जीवन बचा है। उसको सही दिशा और समझदारी से आगे ले चलना है। ऐसी सोच से जीने का ढंग बदल जाता है। जीवन भौतिक तथा भोगवादी चिन्त से निकलकर धार्मिक व आध्यात्मिक पथ पर चलने लगता है। यही जीवन का तत्त्वज्ञान है।

बी.जे.–129,
पूर्वी शालीमार, नई दिल्ली

☞ पृष्ठ 08 का शेष

आर्य समाज की मान्यताएं...

कहते हैं–

सत्यमेव जयते नानृतम्।

असत्य कभी विजयी नहीं होता। मात्र वाणी का सत्य ही पर्याप्त नहीं है। उसके साथ आचरण भी सत्याधारित होगा। भारतीय संस्कृत में सत्य को सदा महत्त्व मिलता रहा है। राम ने सत्य के लिए पिता का वियोग ही नहीं सहा उनकी मृत्यु की भी विभीषिका को देखा। कृष्ण ने सत्य की रक्षा के लिए मामा कंस से बैर मोल लिया तथा महाभारत के युद्ध में कौरवों को पराजित किया। राणा प्रताप ने सत्य के लिए वर्षों जंगलों की खाक छानी तथा अनेक कष्ट उठाये। शिवाजी ने सत्य रक्षा की विजय के लिए ओरंगजेब से आजन्म संघर्ष किया। वर्तमान युग में ऋषि दयानन्द ने सत्य के प्रचार को सर्वोपरि माना। गांधी जी ने तो सत्य को ईश्वर ही माना था। इस प्रकार आर्यों के लिए सत्य जीवन के प्रत्येक पक्ष में आचरणीय है।

आर्यों की मान्यताएं हैं– आर्य नाम को स्वीकार करना, वेद को धर्म मानना एवं परमेश्वर को पूज्य मानता तथा आजन्म सत्याचरण करना।

315 शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर

☞ पृष्ठ 09 का शेष

वर्तमान वैश्विक समस्याएं ...

लिए माधुर्य गुणयुक्त वाणी को वदतु (कह) वैसे पति भी शान्त होकर अपनी पत्नी से सदा मधुर भाषण किया करे।[25]

हे गृहस्थो! तुम्हारे में भाई–भाई के साथ द्वेष न करे और बहिन–बहिन से सम्यक् प्रेमादि सुखदायक वाणी को बोला करे।[26]

जिस कुल में स्त्री से पति तथा पति से स्त्री संतुष्ट रहती है उस कुल में अवश्य ही सर्वदा कल्याण होता है।[27]

निष्कर्ष– उपर्युक्त सन्दर्भों एवं समाधानों को दृष्टिगत रखते हुए हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में समाज में व्याप्त अनेकानेक समस्याओं का पूर्ण समाधान वेदोक्त मार्ग पर चलकर किया जा सकता है। महापुरुषों के मुख से निकले वचन अक्षुण्ण हो जाते हैं। उनके विचारों की यथार्थता प्रत्येक युग में प्रासंगिक और प्रेरक बनी रहती है। प्रत्येक सामाजिक पक्ष में आदिकाल से वैदिक ऋषि मुनियों का चिन्तन रहा है कि **"वेदाऽखिलो धर्ममूलम्"** महर्षि मनु का मनतत्व भी उपर्युक्त तथ्य की सुतराम् पुष्टि करता है कि–

"चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति"।। मनु–12/96।।

एल.एस.एम राज. स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, पिथौरागढ़ उत्तराखण्ड

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसेंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 07-08 \10 \2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39 \57

पटना प्रक्षेत्र में वेद प्रचार सप्ताह एवं श्री कृष्ण जयन्ती समारोह हुआ सम्पन्न

पटना प्रक्षेत्र के 15 डी.ए.वी विद्यालयों में सामूहिक यज्ञ–हवन और वेद प्रचार के कार्यक्रम को धूमधाम के साथ मनाया गया। आर्य समाज मंदिर न्यू बेली रोड़, दानापुर पटना में श्रावणी उपाकम के साथ वेदप्रचार सप्ताह शुरु हुआ तदोपरान्त क्रमशः डॉ डी. राम डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल गोला रोड दानापुर, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल खगौल, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल वाल्मी, फुलवारीशरीफ, पटना, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल बी.एस.ई बी. कॉलोनी, पटना, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल बी.एस.ई.बी. कॉलोनी, पटना, एवं डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल कंकड़बाग पटना में श्री राय जी स्वयं अपने धर्माचार्य अरविन्द शास्त्री के साथ पहुँच कर यज्ञ –हवन में सम्मिलित हुए एवं यज्ञ के वैज्ञानिक महत्व तथा ईश्वरीय ज्ञान वेदों की अपौरुषेयता की ओर विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को प्रेरित किया।

आर्य समाज मंदिर न्यू बेली रोड़, दानापुर पटना के सभागार में श्री कृष्ण जन्माष्ठमी समारोह का भव्य आयोजन हुआ। मंचीय कार्यक्रम शुरू हुआ जिसमें दर्जनों प्राचार्यगण, शिक्षकवृंद, आर्यजनों के अतिरिक्त सैकड़ों विद्यार्थियों ने सोत्साह भाग लिया। इस अवसर पर गीताश्लोकोच्चारण प्रतियोगिता तथा वेदमंत्रोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन हुआ जिसमें प्रक्षेत्र के 14 विद्यालयों के विद्यार्थियों ने प्रतिभागी के रूप में भाग लिया।

समारोह के मुख्य अतिथि श्री एस. के. भारद्वाज सवो निवृत्त पुलिस महानिदेशक बिहार थे। इन्द्रजीत राय ने योगीराज श्री कृष्ण के जीवन को राष्ट्र भक्ति से ओत प्रोत, समर्पित और जनोपयोगी बताया।

कार्यक्रम के अन्त में आगत अतिथियों, प्राचार्यो तथा शिक्षकों तथा आर्यो को स्मृति चिन्ह तथा आचार्य चमूपति की लिखित पुस्तक ''योगेश्वर श्री कृष्ण'' भेंट स्वरूप दी गई तथा प्रतिभागियों को प्रमाणपत्र एवं पुर स्कारों को पुरस्कृत किया गया।

प्रक्षेत्र के सभी प्राचार्य इस समारोह में उपस्थित थे। श्री रामाशीष राय, सुश्री कंकणाघोष, श्री एच.के. सिंह, श्रीमती स्नेहा जे. कुलकर्णी, श्रीमती कुमारी प्रिया, श्रीमती सीमा सिन्हा, श्री पी. दत्ता ने सम्पूर्ण कार्यक्रम को देखकर सराहा। डॉ वी. एस ओझा प्राचार्य डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल बी.एस.ई.बी. ने धन्यवाद ज्ञापन किया। शांतिपाठ–जयघोष के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ तदोपरान्त सभागत सभी लोगो को ऋषिलंगर का पैकेट दिया गया।

डी.ए.वी. जसोला विहार ने मनाया हिन्दी सप्ताह

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, जसोला विहार, नई दिल्ली में 'हिंदी सप्ताह' मनाया गया। इसके अंतर्गत विद्यालय में हिंदी भाषा से संबंधित अनेक गतिविधियों का आयोजन किया गया। प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों ने कविता–वाचन, कहानी–वाचन, नृत्य तथा लघु–नाटिका के माध्यम से हिंदी भाषा की महत्ता पर प्रकाश डाला। 'समापन समारोह' में माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों ने हास्य–व्यंग्य तथा समसामयिक विषयों पर स्वरचित कविताओं का वाचन किया। 'बाल–श्रम रोको' नुक्कड़ नाटक कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण रहा। इस अवसर पर डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल श्रेष्ठ विहार के वरिष्ठ हिंदी अध्यापक डॉ. अरविन्द कुमार झा विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित हुए। उन्होंने 'हिंदी भाषा की वर्तमान स्थिति और भविष्य में संभावनाएँ' बताते हुए विस्तार भाषण दिया।

विभागाध्यक्ष श्रीमती वीना साहनी ने हिंदी भाषा के विकास को देश की उन्नति का आधार बताया तथा देश–विदेश में हिंदी भाषा में रोजगार के अवसरों प्रकाश डालते हुए हिंदी को अपने जीवन तथा व्यवहार में अपनाने हेतु प्रेरित किया। विद्यालय के प्रधानाचार्य डॉ. वी.के. बड़थ्वाल ने सभी विद्यार्थियों तथा हिंदी विभाग को हिंदी दिवस की बधाई देते हुए हिंदी भाषा के विकास के लिए सदा प्रयत्नरत रहने के लिए प्रोत्साहित किया।

डी.ए.वी. खड़िया में साप्ताहिक यज्ञ का कार्यक्रम शुरू हुआ

''यज्ञो वै श्रेष्ठ तमं कर्म'' ऋषिमुनि परम्परा की अनुगामिनी संस्था डी.ए.वी. सीनियर सेकेण्डरी पब्लिक स्कूल खड़िया में सत्र–2015–16 में धर्म से जुड़े रहने हेतु कक्षावार साप्ताहिक हवन कार्यक्रम सम्पन्न कराया गया जिसमें कक्षा 12वीं से लेकर कक्षा तृतीय तक के छात्र–छात्राओं ने अलग–अलग दिनों में कक्षा अध्यापक/अध्यापिकाओं के साथ बैठकर हवन कार्यक्रम में भाग लिया। इसका मुख्य उद्देश्य बच्चों को मानसिक रूप से एकाग्रचित्त बनाना तथा वातावरण को पुष्टि प्रदान करना था जिससे शिक्षा–दीक्षा को उचित दशा एवं दिशा मिले।

प्रथम चक्र अप्रैल से लेकर अगस्त माह तक चला जिसमें 18 प्रभागों के छात्र–छात्राएँ लाभान्वित हुए। विद्यालय के प्राचार्य श्री अशोक माथुर जी ने हवन कार्यक्रम में बताया। सितम्बर माह में सम्पन्न होने वाली एस.ए. I की परीक्षा समाप्ति के बाद द्वितीय–चरण में पुनः क्रमानुसार इसी तरह से बच्चों की एकाग्रचित्तता हेतु उन्हें उचित क्रम दिया जायेगा। साथ ही साथ उन्होंने यह भी कहा कि दैनिक यज्ञ से वातावरण के साथ–साथ व्यक्ति के मन–मस्तिष्क को पुष्टि मिलती है। ऐसा कदम बच्चों के हित को ध्यान में रखते हुए उठाया गया है। छात्रों के बौद्धिक विकास हेतु यह प्रयास एक अनूठा उदाहरण है।

प्रथम सत्रीय हवन कार्यक्रम को संस्कृत शिक्षक डॉ. मिथिलेश झा एवं हिन्दी शिक्षक श्री अर्जुन मिश्रा ने कुशलता पूर्वक सम्पन्न कराया। बच्चों तथा अध्यापकों में इससे हर्ष व्याप्त है।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.**, डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**